Printed and Published by

Srilal Jain

at the JAIN SIDDHAHNT PRAKASHAK PRESS,

9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

प्रारंभिक-प्रस्तावना।

——:०:——

प्रिय पाठक गण! यह "जीवंधर नाटक" जो कि आपके कर कमलों को सुशोभित कर रहा है, मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि अनुसार श्रीमद्वादीभसिंह विरचित क्षत्रचूड़ामणि महाकाव्यके आधारको लेकर बनाया है। वर्तमानमें अधिकतर लोगोंकी रुचि नाटक एवं उपन्यासादिके पढ़नेमें विशेष देखी जाती है, अतएव बजाय उन नाटकोंके कि जिनमें धार्मिक भाव बहुत कम होते हैं इस धार्मिक नाटक को जनता अवश्य अपनावेगी।

नाटकों का लिखना अर्वाचीन न होकर एक प्राचीन कृति की ही नकल है। समय के फेर से और संस्कृत भाषाका प्रचार कम होने से वर्तमान प्रचलित हिंदीभाषामें ही इनका प्रचार लाभदायक हो रहा है। मैंने मूल ग्रंथको छोड़ा नहीं है। उसीके आशय को लेकर बनाया है जिससे ग्रंथ का सारा भाव आ गया है किन्तु कई एक सज्जनों की राय से अन्तके लंबका विषय जो वैराग्य एवं मोक्ष गमन का है छोड़ दिया गया है। इस पुस्तक निर्माण में मेरी इच्छा के अतिरिक्त कई एक महाशयों की प्रेरणा भी बराबर रही जिससे कि मैं इसे आपके सामने उपस्थित कर सका हूं। यदि जनताने इस मेरी कृतिको पसंद किया तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा एवं आगे और भी धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित करूंगा जो कि लिखी हुई

रक्खी हैं। जिनके पढ़ने से धार्मिक लाभके साथ २ मनोरंजन भी होगा।

अंतिम निवेदन है कि मेरे प्रमाद एवं अज्ञानतासे संभव है कि अनेक त्रुटियां रह गई हों मगर आप अपने उदार चित्तसे उनपर क्षमाकर कृपया सूचित करेंगे ताकि वे अशुद्धियां आगामी संस्करण में निकाल दी जांय। शुभ भूयात्।

समाज का दास

कुंजविहारीलाल जैन शास्त्री प्रधानाध्यापक
दि० जैन पाठशाला—हजारीबाग

समर्पण

जिनके पूज्य चरणोंके प्रसादसे मैंने दो
अक्षरोंका ज्ञान प्राप्त किया, जो मुझे
प्राण-स्वरूप समझते थे, जिनकी
असीम कृपा मेरे ऊपर रही, जिनकी
वजहसे यह मेरा शरीर लालित
पालित हुआ जिनके उपकारोंने
ही मुझे इस लायक बनाया,
उन स्वर्गस्थ परमपूज्य
पिता (श्रीजसरामजी) के
पवित्र करकमलोंमें मैं
यह अपनी लघुकृति
"जीवंधर-नाटक"
सादर समर्पण
करता
हूं।

आपका प्रियपुत्र—कुंजविहारीलाल जैन

नाटकके पात्र ।

सत्यन्धर............राजपुरीके राजा

जीवन्धर............सत्यन्धरके पुत्र राजकुमार

काष्ठांगार..........सत्यन्धरका विश्वासी मन्त्री, और अन्तमें उन्हींके मारने वाला शत्रु

गोविंदराज........धरणीतिलकके राजा यानी जीवंधरके मामा

गन्धोत्कट............राजपुरीका नगरसेठ यानी जीवंधरका धर्मपिता

नन्दगोप............राजपुरीका एक मुख्य एवं धनाढ्य ग्वाला

नन्दाढ्य..........गंधोत्कटका पुत्र यानी जीवंधरका भाई

पद्मास्य..........जीवंधरका मित्र

भवदत्त..........एक मूर्ख विद्याधर

श्रीदत्त............राजपुरीका सेठ

विदूषक, मन्त्री, द्वारपाल, साधु, रसोइया, ग्वाले, पथिक राजपुत्र, सेनापति, एवं दीवान सेठ आदि ।

नाटककी पात्रायें ।

विजया............सत्यन्धरकी स्त्री यानी जीवंधरकी मा

गंधर्वदत्ता.......जीवंधरकी पटरानी । गुणमाला, सुरमंजरी कनकमाला, विमला आदि जीवन्धरकी सामान्य स्त्रियां

मदनवेगा.........एक दुश्चरित्रा विद्याधरी

नटी, परियां, देवी, सेठानी, सखी और स्त्री वगैरः ।

श्रीजीवंधर-नाटक

रंगभूमि

(सूत्रधारका प्रवेश)

सूत्रधार—अहा ! आज कैसा सुहावना, मन प्रसन्न करनेवाला समय है । दिलमें आनंदकी लहरें स्वाभाविक बह रही हैं, मनमें खुशीका जमाव पूरा जम चुका है, समय अनुकूल है । अत: दिल चाहता है कि कोई ऐसा खेल खेलूं जो सबको आनंददायक हो । अच्छा अभी जाता हूं और नटीसे सलाह कर यह आनंदकार्य शुरू कराता हूं । (सूत्रधारका चला जाना)

(सूत्रधार और नटीका प्रवेश)

सूत्रधार—प्रिये ! देखो आज कैसा सुहावना समय मनोहारी और खुशदिल प्रतीत होता है । मेरी इच्छा है कि आज हम आगन्तुक सभाके समक्ष कोई हर्षमयी चित्र खींचा जाय, जिससे सभीका दिल प्रसन्न हो और साथमें अपना मनोरथ भी सफल हो ।

नटी—प्रियतम ! आपका यह प्रस्ताव समयानुकूल है । मैं इसमें तन मनसे सहमत हूं आप आज्ञा कीजिये जिससे कार्य शीघ्र शुरू कर दिया जाय ।

सूत्रधार—हे मुग्धे ! प्रथम तो तू यह बता कि कौनसा दृश्य मनोज्ञ-सरस और धार्मिक है, जिसके खेलनेसे अपना मनोरथ सफल हो सकेगा ।

नटी—प्रियवर ! जीवंधर-नाटक खेलिये, जो सरस और आनन्दका खजाना है, तथा साथमें शिक्षाप्रद भी है, खेलकर सबके चित्तोंको प्रसन्न कीजिये ।

सूत्रधार—ठीक है प्रिये ! तुमने बहुत ठीक कहा, यह समय भी ठीक 'जीवंधर नाटक' ही खेलनेका है । चलो और सभीको आज्ञा दो कि तुम सभी पात्र अपना २ पार्ट बड़ी मुस्तैदी और दिलचस्पीसे करो । प्रथम मङ्गल गान करनेकेलिये परियोंको भेजा जाय बाद जिसका जो कार्य होगा कराया जायगा ।

(दोनोंका चला जाना)

(परियोंका प्रवेश—मङ्गल गान)

श्री ऋषभ गुरुवरा, युग आदि अवतरा
तारि भव्य जीव कर्म काटि खुद तरा ॥ टेक ॥
आदिनाथ तुव नाम इसीसे दिया आदि उपदेश रसाल ।
धर्म कर्मकी करी व्यवस्था भविजन तारन तरन विशाल ॥
लखि परंपरा ॥ श्री ऋषभ गुरुवरा ॥ १ ॥
गर्भ जन्म तप ज्ञान और निर्वाण पंच तुव भवि सुखदाय ।

तीन लोकके जीव गहैं सुख महिमा तुव बरणो किमि जाय ॥
सर्व सुखकरा ॥ श्री ऋषभ गुरुवरा ॥ २ ॥
नाम लेत सब विघ्न पलावें सुख-संपति थाहैं अधिकाय ।
देखि सुमूरति सुभग सलोनी तेरी किसका मन न रिझाय ॥
हर्ष मन भरा ॥ श्री ऋषभ गुरुवरा ॥ ३ ॥
आज तेरे पद कमल कृपासे 'जीवंधर नाटक' सुख साज ।
खेलें सभामध्य हम सब मिलि राखि 'कुंज'की हे प्रभु लाज ॥
चरण शिरधरा ॥ श्री ऋषभ गुरुवरा ॥ ४ ।

(गाते गाते परियोंका चला जाना)

[यवनिका पतन]

अंक पहिला—सीन पहिला ।

राजमहल ।

राजा सत्यंधर और रानी विजयाका बैठा दिखाई देना ।

सत्यन्धर—प्रिये । संसारमें प्रेम एक अद्भुत पदार्थ है जिसकी महिमा बयान नहीं की जा सकती । मैं भी इस प्रेमका मरीज हूं और तेरे स्नेहमें चकनाचूर हूं । दुनियामें मनुष्यजन्म इसीलिये है कि वह मनमाने विषयभोगोंका आस्वादन करके अपने जीवनका मजा हासिल करे । यह राजपाटादि सब भार है, झगड़ोंका बाजार है ।

राज्यके ही भारसे चिन्ता कभी मिटती नहीं।
है पराधीनी बडी दिलसे थुवा मिटती नहीं॥
विषय भोगोंमें मजा प्यारी सुनो आता नहीं।
म्यान इकमें एक संग ही खड्ग दो माता नहीं॥

विजया—प्राणप्यारे! आपका कहना ठीक है पुण्योदयसे प्राप्त विषयभोगोंको न्यायपूर्वक भोगना ही चाहिये, मगर अपना स्वत्व अपने हाथसे खोना ठीक नहीं है।

विषयभोगोंका मजा लेना मुनासिब है पिया।
मगर निज अधिकारका खोना मुनासिब नहिं पिया॥
आपकी मैं सेविका सेवा मुझे करना सही।
राज्यकी चिन्ता भुलाना नाथ! ये अच्छा नहीं॥

सत्यन्धर—प्रिये! मैने राज्यका भार अपने विश्वासी काष्ठांगारको दिया है। वह इस राज्यको बड़ी योग्यतासे चलावेगा। और मैं तेरे इस मुखरूपी कमलका भ्रमर बन निरन्तर रसास्वादन करूंगा। मैं तेरे वियोगको एक क्षणके लिये भी सहन नहीं कर सकता।

विजया—प्राणेश्वर। मैं आपकी सेवा करूंगी और हर तरहसे आपके मनवांछित कार्योंको सफल करनेकी चेष्टा करूंगी, क्योंकि—

है नारि वही है धर्म यही उसका पति जिससे सुख पावे।
वह नारि नहीं यह धर्म नहीं जिससे उसका पति दुख पावे॥

सत्यन्धर—(हाथ पकड कर बड़े प्रेमसे) अयि मेरे चित्त को

चुरानेवाली चित्तचोर ! अहा ! मुझे धन्य है जो तुझ सरीखी स्त्रीको प्राप्त हुआ हूं। चलो प्यारी ! आनन्द लूटें और इस जिन्दगीका मजा हासिल करें। (कहकर राजा रानीका हाथ पकड़ भीतर लिवा जाता है) [यवनिका पतन]

अंक पहिला—सीन दूसरा।

राज-दरबार।

काष्ठांगारका मंत्रियोंके साथ बैठा दिखाई देना।

काष्ठांगार—अयि मंत्रियो ! मैंने आज रात्रिमें एक बड़ा बीभत्स और आश्चर्य करनेवाला स्वप्न देखा है, वह दुखदाई और भयदायक है। मैं यही स्वप्न आज कई दिनोंसे देख रहा हूं, मगर आज उस देवताकी अत्यन्त प्रेरणासे मुझे कहना पड़ता है, अब जैसा आप लोगोंकी समझमें आवे वैसा करें। "एक देव मुझसे आज कई दिनोंसे कह रहा है कि तू राजाको मार डाल, नहीं तो मैं सारी प्रजामें एक भारी उत्पात खड़ा कर दूंगा।" मे जानता था कि यह महान विघ्न योंही टल जायगा मगर आजके उसके बलात्कार एवं गर्जन तर्जन आदिको देखकर में हताश होगया हूं। अब इस विषयमें क्या करना चाहिये यह मैं आप लोगोंसे जानना चाहता हूं।

मंत्री-धर्मदत्त—(दुखित होकर) हाय ! दिनका भी चक्र क्या होता है, जो क्यासे क्या कर देता है ? राजा प्राणोंसे भी प्यारा

माना गया है; आज उसकेलिये यह प्रपंच ! राजद्रोह सर्व पापोंमें बड़ा पाप है। राजद्रोही पंच पातकोंका भाजन है। राजाका देवसे भी अधिक आराधन करना बताया है, उसके लिये आज यह अनिष्ट ! राजाकी लोगोंको अग्निके समान सेवा करना चाहिये, मगर हाय रे स्वार्थ। तेरे साम्राज्यमें जो न हो वही थोड़ा है।

है बडी शक्ति, बडा बल, धर्म औ सत्सङ्गमें।
जैसा रँग रँगियाके करमें वैसा रँगदे रँगमें॥

काष्ठांगार—बात ठीक है। मगर देवकी भयानक चेष्टा और क्रूरतादि देखकर यही निश्चय करना पडता है कि सारी प्रजाकी रक्षाके लिये एकका विघात होना कुछ अनुचित नहीं है। राजनीतिसे यह अन्याय नहीं प्रतीत होता, बल्कि राजाके कर्त्तव्यमें यह बात आकर पडती है।

जो न बल है शांतिमें, नहिं दयामें, नहि धर्ममें।
मगर वह बल देवके हैं क्रूर निन्दित कर्ममें॥

मंत्री-मथन—(उठकर) यही ठीक है। जहां हजारोंकी रक्षा होती हो वहां पर एकका मारना अन्याय नहीं हो सकता। राजाको वही कार्य करना चाहिये जिससे उसकी सारी प्रजामें आनन्द रहे। क्योंकि राजा ही प्रजाका माता पिता है। यदि वही उसके दुख दूर न करेगा तो अन्य कौन कर सकता है।

काष्ठांगार—तथास्तु ! ऐसा ही होना ठीक है, नहीं तो मुझे

सारी प्रजाको पाप सतावेगा। (यह क्रूर आज्ञा सुन सभी सभा कंपित होती है। काष्ठांगार मन्त्री आदि चले जाते हैं)

यवनिका पतन।

अंक पहिला–सीन तीसरा।

राज-महल।

राजा सत्यंधर और उनकी रानी विजयाका बैठा दिखाई देना।

विजया—स्वामिन्! अशोक वृक्षका यकायक नष्ट होना और इसी जगह पर फिर एक नवीन अशोक वृक्ष अष्ट मालाओं सहित उत्पन्न होना, यह स्वप्न आज मैंने रात्रिके पिछिले पहरमें देखा है, सो इस स्वप्नका क्या फल है? कृपया बताइये और मेरी चिन्ताको मिटाइये।

सत्यंधर—(कुछ चिन्तित हो) प्रिये! जो तूने उगता हुआ अष्ट मालाओंकर सहित अशोक वृक्ष देखा है उसका फल यह है कि तेरे अत्यन्त प्रतापी पुत्र होगा और उसके आठ स्त्रियां होंगी।

विजया—(उदास होकर) और प्रथम नष्ट हुये अशोक वृक्षका क्या फल है?

सत्यंधर—(उदास होकर) उसका फल कुछ नहीं है।

विजया—(अति रंजके साथ) क्या उसका फल कुछ नहीं है! आपके चहरे पर यह उदासी क्यों है?

सत्यंधर—(चित्त सम्हाल कर) नहीं प्रिये! उदासी कैसी? तुझे कैसे मालूम हुआ कि मैं उदास हूं।

विजया—क्या कभी चित्तका विकार भी छिप सकता है? भीतरी बातको चेहरा झट कह देता है। क्या आप छिपाते हो? नहीं नाथ। छिपाकर मेरे गमको न बढ़ाओ।

सत्यंधर—मनोहरे! तुझे बड़ी पहिचान है। अच्छा चलो उस बगीचेमें चलें। देखो सामने कैसा मयूर नृत्य कर रहा है और……

विजया—(बात काट कर) हे प्राणाधार! क्या मुझे आप बातोंमें ही टालते हो। शीघ्र ही पहिले स्वप्नका फल कहो। देखो। मेरा हृदय कैसा धड़क रहा है (रानी राजाका हाथ पकड़ अपने हृदय पर रखती है।

सत्यंधर—(आंखोंमें आंसू भरकर) प्राणप्यारी! उसका फल क्या पूछती है। उसके पूछनेमें कुछ सार नहीं है। वह भी कुछ अनिष्ट बतलाता है…(यह सुनते ही रानी मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़ती है)

सत्यन्धर—(स्वगत) अहा। मैंने इस प्राणप्यारीकी सीख न मानी इसीसे इसका कटुक फल सामने आरहा है। (शीतो पचार कर) हे प्रिये। उठो। क्या तू मुझे स्वप्नमात्रके देखनेसे ही मरा हुआ समझती है? क्या वृक्षकी रक्षाके लिये उसे जल न देकर अग्निसे जलाना योग्य है? क्या बुद्धिमानोंको संकटके समयमें शोक करना उचित है? क्या अपनी रक्षाके निमित्त अग्निमें पड़ना बुद्धिमानी है? क्या आपत्तिकालमें धर्मको भूल जाना चाहिये? क्या धर्ममें चित्त लगानेसे विघ्न

नष्ट नहीं होते ? प्यारी उठो और बोलो ! मैं तेरी ऐसी अवस्था कब तक देख सकता हूं ? (राजा रानीका हाथ पकड़ उठाता है और वह भी अपने पतिके हस्तस्पर्श होते ही उठ बैठती है)

विजया—हे जीवनसर्वस्व ! मुझ अबलाकी तरफ देखो और बचाओ । मैं दुःखरूपी समुद्रमें बही जारही हूं । क्या आप सामर्थ्यवान होकर भी मेरी रक्षा न करेंगे ? हाय ! (फिर बेहोश हो गिर पड़ती है)

सत्यन्धर—(स्वगत) कैसा नाजुक समय आगया ! हायरे कर्म ! जो तू करे वह सब थोड़ा है । (फिर सचेत करके) प्रियतमे ! मेरी हृदयेश्वरी !! तू क्या बातें कर रही है ? क्या तुझे मालूम नहीं है कि पुण्योदयसे सारी विपत्तियां दूर हो जाती हैं ? क्या तूने मुझसे प्रेम करना बिलकुल छोड़ दिया ? क्या अब तेरे हृदयमें मेरे लिये स्थान नहीं है ? क्या तू मुझे मुर्दा समझती है ? नहीं प्यारी ! उठो ! और मेरे सुखमें बाधा मत दो । मुझे अधिक दुःख मत दो । इतनी अधीर क्यों होती हो ? उठो ! उठो !!

विजया—(पैरोंमें पड़कर) हे प्राणनाथ ! मैं अज्ञानी हूं । आपके दुखमें दुखिया और सुखमें सुखिया हूं । क्षमा करो प्रभो ! मेरी अबोधता पर क्षमा करो ।

सत्यन्धर—(रानीको उठा छातीसे लगाकर) मृगलोचने ! देखो वह सामने कैसा मनोज्ञ उपवन है, उसमें कैसी सर-सब्जी दिलको लुभानेवाली छारही है । अहा ! वृक्ष पर बैठी हुई

कोयल कैसा सुहावना मधुर और कामल शब्द बोल रही है। मन्द मन्द हवा अपना अपूर्व ही छटा दिखा रही है।

देखा पर ऐसा समय अरु बाग न देखा।
देखा पर ऐसा कारणकलाप न देखा॥
है रंग रूप सब सामान समान प्यारी।
तेरे बदन पर चमन ये गुलजार प्यारी॥

विजया—अहा! प्राणप्यारे। आपका कहना ठीक है। यह समय एक अद्भुत अनूठा है, ऐसे वक्त पर शोक करना झूठा है। जब मेरा प्यारा साथ है तब ये हृदय भी सनाथ है।

सुख और प्राण भी तुम हो मेरे शीलके शृंगार तुम हो।
मेरे आधार भी तुम हो और मेरे सर्वस्व भी तुम हो॥
जो तुम हमारे हो तो दुनिया भी हमारी है।
नहि तो मेरे लिये कुछ नहीं, रात अंधियारी है॥

सत्यन्धर—वाह! वाह!! कैसा सुन्दर दृश्य है! कैसी अलौकिक छटा है! इसीमे जीवनका मजा है! बाकी सब कजा है। चलो, प्यारी! उस उपवनमें चलें और इस सामयिक आनन्दको लूटें। (राजा रानीका हाथ पकड उपवनमें लेजाता है और एक स्वच्छ चट्टान पर बैठ कहता है) प्रिये! तेरी सुन्दर छवि एक निराली ही है जिसको किसीकी भी उपमा नहीं लगती। तेरी आवाजके सामने देख उस कोयलका शब्द भी कैसा फीका मालूम पड़ता है। और तू इधर तो देख, यह हंसिनी तेरी चालको देख २ अपनी चालको कैसी बदलती हुई

दीख रही है। क्या प्रिये! तू उधर नहीं देखती, देख तेरे सामने ये कमलपुष्प तेरे खिले हुये मुखकमलको देख कैसा मुरझा गया है मानों, इसे लज्जाने ही दबा लिया है। अहा! तेरा यह सुन्दर रूप इस खिले जोबनका भूप है जो अपनी छटासे आखोंमें चकाचौंध पैदा कर रहा है। (राजा रानीको देख देख हर्षित होता है)

विजया—(शर्माकर) हे मनमोहन! क्यों मुझे व्यर्थ छेड़ते हो और यों ही झूठी तुगबन्दी जोड़ते हो। अच्छा बताइये यह यन्त्र कैसा है जिसको आपने तयार कराया है। क्या यह सवारीके भी काममें लाया जा सकता है?

सत्यन्धर—प्रिये! ये मयूरयन्त्र-आकाशी विमान तेरे दिल बहलाने और अनेक रम्य क्रीड़ास्थलोंकी बहार लेनेके वास्ते बनवाया है। इस पर बैठ देश देशान्तरोंकी शैर कर सकते है। क्या तुम्हारी इसपर बैठनेकी इच्छा है? यदि है तो बैठो अभी इसका गुण मालूम होजायगा।

विजया—हां, बैठनेकी तो इच्छा है मगर भय लगता है और आकाशमें उड़नेकी सुन हृदय धड़कता है। लेकिन तबियत चाहती है कि इसपर बैठ आकाशकी शोभा देखूं।

सत्यन्धर--प्रिये! यह सवारी भयोत्पादक नहीं है। डरो मत, यह इच्छाके मुताबिक चलाया और ठहराया जा सकता है। और जहां चाहो उतारा भी जा सकता है। (राजा रानीको लेकर उस मयूरयन्त्रमें बैठ जाता है और आकाशमें उसे लेजाता है फिर पीछे उतार लाता है।

(नोट—यहां परदेके भीतर स्टेजपर कृत्रिम विमान रस्सीके सहारे खींच लिया जाय और कुछ ऊपर जाकर ठहरा दिया जाय। बाद फिर आहिस्ते २ उतार लिया जाय। परदा भी कुछ नीचे उतार दिया जाय ताकि जनताको ऊपर ठहरा हुआ विमान न दीख सके)

विजया—हे स्वामिन् ! आज आपने इस विमानपर चढ़ाकर मेरे चित्तको अति आनन्दित किया है। अहा ! कैसी मनोहर दिलचस्प सवारी है। यदि ···(आहट पाकर बंद हो जाती है, सामने घबड़ाया हुआ द्वारपाल दिखाई देता है)

द्वारपाल—(हाथ जोड़कर) महाराजाधिराज ! दरवाजेपर बड़ा कोलाहल होरहा है। काष्ठांगार सारी सैन्य लेकर आपको मारने आया है। दरवाजेपर बड़ा झगड़ा होरहा है।

सत्यंधर—(क्रोधित होकर) अहा ! काष्ठांगार ! काष्ठांगार !! मुझे मारने आया है ! इतनी दुष्टता। यह धीठता !! उसका ऐसा हौसला !!! अच्छा; मैं अभी जाता हूं और उसको कियेका फल चखाता हूं। (राजा ज्योंही जाता है इधर रानी त्योंही बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ती है। रानीको गिरी हुई बेहोश देख—स्वगत) अहा ! क्या स्वप्नका दृश्य सच्चा ही होगा ? भवितव्य बलवान है। (प्रगट) हे प्रिये ! तू उठ और देख कि मैं उस पाजीको अभी परास्त करके आता हूं। देख मै उस कृतघ्नको कैसी सजा देता हूं। तू शोक छोड़कर संसारकी ओर देख कि ये जीवन, धन और सम्पदा सभी अस्थिर है। जलके बबूलेके

समान क्षणभंगुर है। कौन किसका मित्र और कौन किसका शत्रु है, शत्रु मित्र मानना केवल विडम्बना मात्र है। प्यारी। उठो और रंज तजो, मैं अभी आता हूं, धैर्य धारण करो।

विजया—(रोती हुई) हाय! प्राणप्यारे!! मुझ अभागिनी को छोड़ आप किधर जाते हो? क्या आपको अब मेरा बिलकुल खयाल नहीं है? हे प्रभो! मुझे अकेली मत छोड़ो। हाय रे मेरे अशुभकर्मके उदय! तू मेरे ऊपर सवार है, अभी तो प्यारेका छूटा करार है। हाय! हाय। क्या मेरे कर्ममें यही बदा था कि मैं पतिवियोगको इस अवस्थामें देखूं? हाय प्यारे! मेरे प्राणोंके अधार! मेरे नयनोंके तारे प्रभू!! क्या मेरी तरफ आपकी निगाह नहीं है? (रोती है)

सत्यंधर—(अधीर हो-स्वगत) देखो! समयकी कैसी कुरंगी चाल है जो कर देती कमाल है। मनुष्य क्या सोचता है और क्या हो जाता है? अहा! कुछ ही देरमें कैसी अवस्था होगई, हाय! इस गुलाबसे चहरेकी रंगत बदल गई। अफशोश! रे काम! तुझे धिक्कार है, आज तेरी ही वजहसे हुआ जहान ख्वार है। मे भी तेरे लपेटमें आगया और आज इस नाजुक अवस्था पर पहुंच गया। (प्रगट) प्रिये! उठो और देखो मैं तुझे कितना समझा रहा हूं। देख! मैं उस दुष्टका अभी विध्वंस करके आता हूं।

मान जा प्यारी मेरी इस बातको तू मानजा।
बैठजा अरु देखले उस दुष्टको दूं जो सजा॥

विजया—(अधीर हो रोती हुई) हाय ! क्रूरकर्म ! निर्दयी दुष्ट पापी ! मारले, दुख देले, तेरा भी समय उपयुक्त है। तू सबको दुख देना दुरुस्त है। हाय ! क्या प्राणप्यारे गये ! (पागलवत् चेष्टा कर गाती है) गाना

प्राणप्यारे ! प्राणप्यारे !! प्राणप्यारे !!! माय ये ॥
जारहे हैं प्राण मेरे-आपके हा ! प्राण ये ॥ टेक ॥
हाय ! दुख आकर पडा मिटना मिटाना कठिन है।
होनहार मिटै नहीं होकर रहै अनिवार ये ॥ १ ॥प्राण०॥
साफ बतला है रहा मेरे गर्भका भार ये।
प्राणप्यारेके पिछाड़ी पुत्र होगा हाय ! ये ॥ प्राण० ॥२॥

(फिर बेहोश हो गिर पड़ती है)

सत्यंधर—(अतिदुखित हो) अहा ! क्या दुःखका समय है ? कौन जानता है; कि आपत्ति एकदम इस प्रकार टूट पड़ती हैं, जो नाकमे दम कर देती हैं। मुझे दुशमनका भय नहीं है, यदि भय है तो इस प्राणप्यारीका ही है। इसे अब समझाना व्यर्थ होगा। मुझे अब कोई उपाय कुटुम्बरक्षाका करना चाहिये।

गाना

पक गया है आम अब गिरनेमें कुछ ही देर है।
जो रहूं बेफिक्र तो होगा बडा अन्धेर है ॥ टेक ॥
स्वप्नकी सारी दशा आंखोंसे लीनो देख है।
होनहार मिटै नहीं पडजाय वज्जर रेख है ॥ पक० ॥१॥
मृत्यु मुझको है बुलाती घडी पल की देर है।

दुर्दशा ऐसी भई ये दुर्दिनोंका फेर है ॥ पक० ॥ २ ॥
विषयभोगोंकी वजह से आज ये हालत हुई ॥
वंशरक्षाका यतन सोचूं करूं क्यों देर है ॥ पक० ॥३॥
यंत्र में बिठला इसे करमें गहूं शमशेर है ।
दुष्ट काष्ठांगारको मारूं करूं क्यों देर है ॥ पक० ॥४॥

(महाराजने निश्चय किया कि इसकी यहां रहनेसे गर्भ रक्षा न हो सकेगी । इससे राजाने तुरत उस मूर्छित रानीको यत्रमें बिठा हलकी चाबी दे आकाशमें उड़ा दिया और आप सिंह-समान रणांगणमें आकर घोर युद्ध किया । सभीके होश ठिकाने कर दिये मगर अंतमें उसे स्वाभाविक वैराग्य उत्पन्न हुआ और इस प्रकार विचार करने लगे—शस्त्र रखकर) "हे आत्मन्! तू मोहको प्राप्त हुआ यह क्या अनर्थ कर रहा है? एक तो तूने अज्ञानवश मोहान्ध होकर विषसमान इन विषयोंका आस्वादन किया उसपर आज फिर तू ये अनर्थ करनेको उद्यत हुआ है! धिक्कार है इन विषयोंको जो प्राणी इनमें फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठता है। अहा! यह मूढ़ प्राणी उच्छिष्ट इन विषयोंपर पतंगकी तरह गिर बेमौत मरता है। देखो! ये मूढात्मा स्त्री के महान अपवित्र जघनस्थलमें विष्टाके कीड़े समान आनंद मानता है किन्तु विचार नहीं करता कि मैं कौन हूं? मुझे क्या करना है और मैं क्या कर रहा हूं? अहा! यह मोहका कोपही इस जीवको सर्वथा भिन्न पदार्थमें मोहित कर देता है। वास्तवमें एक आत्मा ही अपना है और सब सपना है।" गाता है—

गाना वैराग्य रूपमें।

है अथिर संसार कोई सङ्गमें जाना नही।
मोहके वश होय प्राणी निज दशा ध्याता नही॥ टेक॥
मूख बन इन विषय भोगोंमें रमैं डरता नही।
अशुच और अशुद्ध तनमें रमै भय खाता नहीं॥ है अ०॥
शरण नहि कोई जगतमें बात ये जाने नहीं।
कर्म-वैरीसे लडाई मूर्खा ये लडता नहीं॥ है अ०॥
कौनका है राज्य-धन तन ये रहस जाने नहीं।
जीवकी निर्मल दशाका खोज कर पाता नहीं॥ है अ०॥
मूर्ख तू नित सैंकडों अपराध कर धापा नही।
छोड झंझट जगतके निज रूप क्यों ध्याता नहीं॥ है अ०॥

(इत्यादि चिन्तवन कर राजा सत्यन्धर ध्यानस्थ हो जाता है। उसी समय काष्ठांगार आकर उनका प्राण जुदा कर देता है। राजाका मृत-शरीर ज़मीन पर पड़ जाता है)

यवनिका पतन।
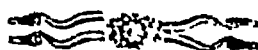
अंक पहिला—सीन चौथा।

श्मशान।

विमान पर बैठी हुई विजयाका चिन्तातुर अवस्थामें दीखना।

(एक देवीका धायके रूपमें प्रवेश)

देवी—(रानीकी प्रसूति अवस्था अति-निकट देख) हे पूज्ये! उठो और मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें एक अच्छे स्थान पर ले चलती हूं। मुझे तेरे दुःख की मालूम है कि आश्मानसे गिरी है और एक गर्भकी पीड़ासे भी पीड़ित है। चल; भय मत करै और तू मुझे अपनी हितकारिणी समझ।

विजया—(रोती हुई) हाय! मेरी यह दशा! अच्छा बहन! चलती हूं और अपने कर्मोंकी परीक्षा करती हूं। तुम्हें देखनेसे मुझे कुछ धैर्य बंधता है। (रानीको धाय हाथ पकड़ कर एक उत्तम बने हुए प्रसूति-घरमें ले जाती है और वहां वह विधिपूर्वक पुत्रजननयोग्य सब क्रियाओंको करती है)

देवी—(पुत्रके लक्षणोंको देख कर) हे सुभगे! यह तेरा पुत्र बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा होगा। देख, ये शुभ लक्षण इसके इस बातको प्रगट करते हैं। (लक्षणोंको दिखाती है)

लक्षणोंसे जान पडता है प्रतापी होयगा।
धर्मका धारक हितैषी दुःखनाशक होयगा॥
शत्रुओं पर विजय पा साम्राज्य पद पावे सही।
कर्म-शत्रु विनाशि पाछे पायगा अष्टम मही॥

हे सुबुद्धे ! अब तू मेरी बात सुन इसीके मुताबिक कर, इसीमें तेरा भला है।

विजया—हे बहन ! मैं तेरा भारी अहसान मानती हूं और तुझे सच्चे दिलसे चाहती हूं, भला मैं तेरी हितकारी सीख क्यों न मानूंगी ?

कौन है जगमें मेरा जिसके निकट जाऊं बहन।
मुझ अभागिनका सहायक कौन है कह तू बहन।
जो कहैगी तू वही कहना करूं तेरा बहन।
है मेरी उपकारिणी तू दिल यही कहता बहन॥

देवी—हे गुणनिधे ! तू इस समय कैसी अवस्थामें है क्या तुझे ये मालूम नहीं है ? क्या तू ऐसी अवस्थामें अपने इस पुत्र-का पालन-पोषण कर सकेगी ? यदि पुत्रका यथोचित लालन पालन और शिक्षण न हुआ तो क्या होगा ? अतः तू इस महा-भाग्यशाली पुत्रको इसी जगह रख दे। इस तेरे पुत्रको अभी कोई योग्य पुरुष ले जायगा और वह उचित रूपसे इसका पालन पोषण करेगा।

विजया—(अति निराश होकर) हे बहन ! क्या कभी माता अपनी प्रिय सन्तानको ऐसे भयंकर स्थानमें डालके हुये बच्चेको छोडकर जायगी ? क्या कोई ऐसा भी कर सकेगा ? मुझसे जिस तरह होगा इसका पालन पोषण करूंगी और इसके मुखको देखकर ही इन दुःखभरे दिनोंको पूरा करूंगी। बहन ! मेरा जगतमें कौन है ?

हाय ! क्या मेरी दशा इस समय दुर्धर हो रही।
जो भिखारिनकी दशासे भी बुरी कहला रही ॥
क्या कोई निज प्राणसम प्रिय पुत्रको दे फेंककर।
हा! लके जन्मे हुए नादान निर्दय होयकर ॥ (रोती है)

देवी—हे भद्रे ! समय अधिक नहीं है जल्दी मेरा कहना मान, तेरा इसीमें कल्याण है। मेरी बातको झूठ मत समझ। इस पुत्रसे तेरा मिलाप होगा, तू एक दिन फिर सुख देखेगी। मगर यह समय जो मैं कहती हूं यही कह रहा है। यह पुण्यात्मा जहां जायगा वहीं पर आदर पायगा, तू इसे यहीं पर रख दे और देखले कि मेरा कहना कहां तक सच है।

विजया—हाय ! मुझ अभागिनीको कुछ भी नहीं सूझता कि मैं क्या करूं ? मैं इस अपने प्राणोंसे प्यारे पुत्रको छोड़ना भी नहीं चाहती और आपकी बातको भी टालना नहीं चाहती, क्या करूं बड़ी परेशान हूं। हाय कैसा समय आ गया ......
(रोती है)

देवी—(बड़े प्रेमसे) हे पुण्यमूर्त्ते ! तू क्यों रोती है ? भवितव्य बलवान है। शान्त न कर और मेरे वचनों पर श्रद्धान करके इस पुत्रको यहीं रख दे। देख इसे कोई तेरे देखते देखते ही उठा ले जायगा। वह इसका राजपुत्रके समान लालन पालन करेगा। क्यों व्यर्थमें चिन्ता कर रही है।

विजया—(एक लम्बी सांस भर कर) अच्छा बहन ! तेरा ही कहना करती हूं और इस पुत्ररत्नको यहीं पर रखती हूं। आगे भवितव्यके आधीन है जो हो—

क्या करूं प्यारी वहन दिलमें दरद बेरोक है।
मानना मुझको तुम्हारा वचन जो ये नेक है॥

(रानी विजयाका चेहरा एकदम फीका पड़ जाता है; हाथ काम नहीं देते जैसे तैसे धायके वताये हुए स्थान पर पित्रीय मुद्रिकासमेत पुत्रको लिटा देती है और आप एक जगह छिप कर देखती है कि कोई इसे लेने आता है या नहीं ? उसी समय एक पुरुष साथमें लाये हुये मृत पुत्रको एक तरफ रख जीवित पुत्रकी इधर उधर खोज करता है। उस पुरुषको पासमें पड़ा हुआ एक सुन्दर पुत्र दीखता है और उसे छातीसे लगा लेता है। एक तरफसे 'जीव' ऐसी आई हुई आशीर्वादात्मक आवाज सुन वह पुरुष भी इसका नाम जीव यानी 'जीवधर' रक्खूंगा ऐसा दिलमें संकल्प कर चला जाता है। यह देख इधर रानीको बडा दुःख होता है वह अपनी छाती मसोसकर रह जाती है। धायकी धाकसे कुछ भी नहीं कहती)

देवी—हे विशालनेत्रे ! देखा ! यह तो मेरा कहना ठीक निकला न। अब तू भी चिन्ता छोड और तपोवनकी तरफ चल। वहां कुछ दिन धर्मध्यानमें व्यतीत कर, तेरे कुछ ही दिन बाद दिन फिरेंगे और तू सब सुख इसी पुत्रके प्रतापसे देखेगी।

सोच करना छोड दो दिलमें धरो साहस वहन।
चन्द रोज धरो प्रभूका ध्यान तुम प्यारी वहन॥
तपोवनमें जाय तुम समता धरो मेरी वहन।
मिलेगा तुव पुत्र, होगा राजराजेश्वर वहन॥

विजया—हे सुभगे ! न मालूम मेरा दिल क्यों धडकता

हैं। न दीखता है और न सूझता है कि मैं अब क्या करू? प्रिय बहन! मुझे तुम्हारा कहना स्वीकार है। तपोवन कितनी दूर है चलो, बहन! मुझे हाथ पकड़ ले चलो।

देवी—(हाथ पकड़ धीरे २ ले जाती हुई) हे सद्गुणे! अब तपोवन यहांसे थोड़ी दूर है। वहां पर शांति भरपूर है। वहां पर न दुःख है, न संताप है, न मोह है और न क्रोध है, किन्तु हर समय आनन्दका स्रोत जारी रहता है। चलो बहन धीरे धीरे चलो।

विजया—(चलते चलते) चलो बहन मुझे एक तुम्हारा ही सहारा है तुम जहां चलोगी और जहां पर रहोगी मैं रहनेको तयार हूं। तुमने मेरे बहुतसे दुःखको बटा लिया है।

देवी—(चलतेर) बहन! कुछ फिक्र न करो। वीर वही कहलाता है जो आई हुई आपत्तिमें धैर्य धारण कर उसे समभावों से सहन करता है। देख, अब तपोवन बिलकुल नजदीक आ गया। वे सभी साध्वी देख कैसा समभावसे आत्म ध्यान कर रही हैं। (सामने बैठी हुई साध्वियोंको जो एक सफेद साड़ी मात्र ओढ़ आत्मध्यानमें कुछेक दूरपर बैठी हैं उन्हें दिखाती है। ज्योंही उधर रानीकी निगाह तपोवन पर पड़ती है त्योंही उधर धाय (देवी) छिपकर अदृश्य हो जाती है। रानी पीछे धायको देखती है मगर उसे वहां न देख मूर्छित हो जमीनपर गिर पड़ती है और गिरते ही बेहोश हो जाती है। धीरे २ परदा गिर जाता है)

[यवनिका पतन] डाप।

प्रथमांक समाप्त।

द्वितीयांक।

अंक दूसरा—सीन पहिला।

सेठ गंधोत्कटका महल।

गंधोत्कटकी सेठानीका अपनी सहेलीके साथ उदासीन रूपमें बैठा दिखाई देना।

(गोदमें पुत्रको लेते हुए गन्धोत्कटका प्रवेश)

गन्धोत्कट—(पुत्रको गोदमें लिये अपनी स्त्रीसे) क्यों पागल! तूने जिन्दे लड़केको ही मरा हुआ समझ मुझे दे दिया। यदि मैं भी इसकी अन्त समयमें परीक्षा न करता तो वता आज कैसा अनर्थ हो जाता! ले अपने इस जीवित पुत्रको सम्हाल और अपना अहोभाग्य समझ।

सेठानी—(हाथ पसारकर बड़े प्रेमसे) सच कहते हो क्या प्राणनाथ! लाओ और मेरे प्रिय पुत्रको दो। (वह पुत्रको अपनी गोदमें ले लेती है और उसका मुंह चूमती है)

गंधोत्कट—(द्वारपालको बुलाकर) ड्योढ़ीवानसे कह कर शीघ्र ही यह घोषणा सारे शहरमें फिरवा दो कि "सेठ गन्धोत्कट की तरफसे आज भारी दान वितरण किया जायगा, जिसको जिस चीजकी जरूरत हो ले जावे"

द्वारपाल—जो आज्ञा, अभी सारे शहरमें बक्त खबर करा देता हूं। (कहकर द्वारपाल चला जाता है)

[यवनिका पतन]

——:o:——

अंक दूसरा—सीन दूसरा।

राज-दरबार।

काष्टांगार सिंहासन पर बैठा है और उसके पासमें अमात्यगण बैठे हुए हैं।

काष्ठांगार—(स्वगत) कौन कहता है कि किया हुआ पुरुषार्थ व्यर्थ जाता है? यदि वह बुद्धिपूर्वक किया जाय तो अवश्य ही सफल होता है। क्या सिंह वनका राजा किसीका किया हुआ बनता है? नहीं, वह अपनी चतुरतासे ही सारे वनके जीवों पर राज्य करता है। यदि मैं यह चालबाजी न करता तो क्या आज यह दिन देखता? (प्रगट मंत्रियोंसे) आज मेरी गद्दीनशीनीके दिन प्रजाका कैसा बर्ताव रहा? क्या यह आप लोगोंने मालूम किया है या नहीं?

मन्त्री—महाराज सारी प्रजा अमन चैन कर रही है और आपका गुणगान करती है। किसीके चेहरेपर रंज नहीं दीखता बल्कि सारोंके चहरोंपर खुशी झलक रही है। जगह बजगह उत्सव हो रहा है। सब लोग खुशी मना रहे हैं।

काष्ठांगार—क्यों नहीं? राजत्वका प्रताप ही ऐसा होता

है जो सभीको नम्र और आज्ञाकारी बना देता है। (पासमें ड्योढ़ीवानकी आवाज सुन आश्चर्यसे) हैं; यह घोषणा किसकी तरफसे की जा रही है, उस ड्योढ़ीवानको बुलाकर सारा हाल मालूम करो।

मन्त्री—अभी बुलाता हूं (मन्त्री द्वारपालसे ड्योढ़ीवानको बुलाने कहता है और वह उसे बुला लाता है ड्योढ़ीवानसे) यह घोषणा किसकी तरफसे किस कारणसे की जा रही है।

ड्योढ़ीवान—महाराज! यह घोषणा गन्धोत्कटकी तरफसे की गई है। आज उन्होंने इस खुशीके दिनमें भारी दान देना निश्चय किया है। श्रीमान् आज उनको पुत्ररत्न भी हुआ है।

मन्त्री—(काष्ठांगारसे) देखिये महाराज! आपके प्रथम दिनमें यह खुशखबरी महाराज! लक्षण तो अच्छे प्रतीत होते हैं। अब आपके राज्यमें कोई विघ्न करनेवाला नहीं है, आप तो आनन्दसे राज्य कीजिये और प्रजाको खुश रखिये। आपकी जीत, होनेवाले इन शुभ लक्षणोंसे प्रत्यक्ष दीख रही है।

काष्ठांगार—(खुशीसे उछलकर) अहा! मुझे धन्य है जो इतने बडे राज्यका स्वामी मिनटोंमें बन गया, भाग्य इसे कहते हैं। देखो! मैं आज इसीकी वजहसे इस अवस्थापर पहुंच गया। अच्छा सुनो, जो गन्धोत्कट सेठको आज पुत्र हुआ है उसके लिये सब आवश्यक सामग्री राज्यकी तरफसे भेजी जाय यानी उसका लालन-पालन राज्यकी तरफसे हो, समझे। यह कार्य भार तुम्हारे ऊपर निर्भर है, देखो कुछ गलती न होने पावे। हां!

आजके दिन जितने लड़कोंका जन्म हुआ है वे सब गन्धोत्कटके पुत्रके मित्र हों और उनका भी प्रवन्ध राज्यसे ही किया जाय।

मन्त्री—जो आज्ञा, सब इसी प्रकार किया जायगा। (काष्ठांगार और मन्त्री आदिका चला जाना।)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन तीसरा।

गन्धोत्कटका महल।

गंधोत्कट सेठका अपने मुनीम आदि सहित बैठा दिखाई पडना।

(दान लेनेवालोंका प्रवेश)

गन्धोत्कट—(याचकोंको देख) बैठो भाई! बैठो। (सबको इच्छानुसार दान वितरण करता है, सब याचक लोग चले जाते हैं। एक साधुका प्रवेश)

साधु—(करुणापूर्वक) अरे जिजमान! कुछ भूखेको खिलायगा या योंही भगायगा। मैं तेरा बडा नाम सुनकर तेरे दरवाजे पर आया हूं। मैंने तेरी बड़ी तारीफ सुनी है। मुझे भर पेट भोजन खिलादे बस! मेरा यह एकही सवाल है।

भूंख मुझको मारती है दुख सहा जाता नहीं।
बहुत कोशिश कर चुका पर व्याधि ये मिटती नहीं॥

गन्धोत्कट—आइये महाराज! बैठिये, आपकी अभी इच्छा पूर्ण हो जायगी। (रसोइयेसे) अरे! इन साधु महाराजको

रसोईघरमें लेजाकर भर पेट भोजन कराओ और इनके दुःखको मिटाओ। (साधुकी तरफ) जाइये महाराज ! आप इच्छानुसार भोजन कीजिये और अपनी क्षुधाको मेटिये।

साधु—धन्य है, सेठ जी ! आपको, जो मेरी प्रार्थना मंजूर की मैं जाता हूं और देखता हूं कि ये मेरा दुःख यहां भी मिटता है या नहीं ? (साधु रसोइयेके साथ भोजनालयमें जाता है और वहां बैठ सारा रसोइयेका सामान खा जाता है मगर तृप्त नहीं होता)

रसोइया—(आश्चर्य करके, स्वगत) क्या यह आदमी है या हैवान ! भूत है या प्रेत ! कुछ समझमें नहीं आता। हजारों आदमियोंकी खुराक यह अकेला खा गया, उस पर भी इसका पेट न भरा, अभी और खानेको मुस्तैद है (प्रगट) क्या महाराज ! खानेको और लाऊँ ?

साधु—(झुंझलाकर)

ऐसा खाना तो हमारा बहुत जगहोंपर हुआ।
मगर अबतक पेटभर खाना कहीं पर नहि हुआ ॥
जो मुझे खाना खिलाना चाहते हो पेटभर।
तो न पूछो परसने जाओ कमर नीची जु कर ॥

रसोइय्या—(घबड़ाकर-स्वगत)

अब तो भोजन है नही इसको खिलाऊं और क्या।
जो खिलाऊं गर नही तो इससे लज्जा और क्या ॥
कच्चा पक्का जो मिले उसको खिला भरपेट दूं।
जिस तरह हो उस तरह इसकी क्षुधाको मेट दूं ॥

(प्रगट) हे महाराज ! लीजिये और अपनी क्षुधाको शमन कीजिये (रसोइया सब कच्चा अनाज आटा दाल आदि सामान परोसता है, साधु महाराज उसे परोसते २ चटपट खाते जाते हैं, तृप्त नहीं होते। सभी लोग साधु महाराजके इस कृत्यको देखते हैं और मनमें बड़ा आश्चर्य करते हैं)

जीवन्धर—(जो एक तरफ थालीमें बैठकर ग्रास ले साधु की तरफ बड़ी देरसे देख रहे थे) भाई ! इसे भारी भूखने सताया है, मालूम नहीं, इसे कबसे खानेको नहीं मिला है कि इतना भोजन करने पर भी अभी तक भूखा है ! अच्छा मेरी थालीमें परोसे हुये इस सामानका भी इसे दे दो। (रसोइया जीवन्धरकी थालीका भोजन दे देता है मगर उससे भी उसकी भूख नहीं मिटती)

साधु—(अतिदीनतासे) महाभाग ! मैं बहुत भूखा हूं। तनसे सूखा हूं मगर इस रोगसे वश नहीं चलता। बड़ा परेशान हूं।

यह क्षुधा है रोग जो मुझको सताता हर घड़ी।
ज्ञानमें नहि ध्यानमें लगता न मन है इक घड़ी॥
कुछ न चलता वश मेरा दिन बहुतसे हैरान हूं।
सत्य मारगसे हटा, दुर्ध्यानमें लवलीन हूं॥

जीवन्धर—(आश्चर्यके साथ स्वगत) इसका पेट है या कोट ? कुछ समझमें नहीं आता (प्रगट) अच्छा महाराज ! मेरे इस ग्रासको खाकर अपनी क्षुधाको मेटिये। (जीवन्धर हाथके ग्रासको भी दे देता है)

साधु—(ग्रास खातेही तृप्त होकर) हे पुण्यशालिन् ! मैं तेरा बड़ा उपकार मानता हूं और तेरे पुण्यकी प्रशंसा करता हूं। तूने मेरे इस महान दुखदाई रोगको मिटा दिया ! मैं तेरी क्या प्रशंसा करूं ? अहा धन्य है तुझे महाभाग्य ! मै तेरे इस गुरुतर उपकारका क्या प्रत्युपकार करूं यही सोच रहा हूं। मगर मैं अभी तक निश्चय नहीं कर सका हूं कि तेरे साथ मैं क्या कर्तव्य करूं जो तेरे इस महान उपकारके बराबर न हो तो शतांश भी तो हो।

जीवंधर—हे गुरुवर्य ! मैंने आपका क्या उपकार किया जो आप ऐसा कह रहे हैं, यह सब आपके ही पुण्यका प्रताप था। समझ लीजिये इस रोगकी अवधि इतनीही थी। अब समय आनेपर खतम होगई।

साधु—(खुश होकर) हे वालक ! जब तूने मुझे गुरु कह-कर संबोधन किया है तब मैं भी तुझे सिखाकर सच्चा गुरु बनूं और तुझे सब विद्वानोंमें अगुआ बनादूं। वास्तवमें मैं ज्ञान-दान देनेसे ही कुछ ऋणमुक्त हो सकूंगा, क्योंकि ज्ञानके समान जगतमे न कोई उत्तम चीज है और न इसका कुछ मूल्य है। इस ज्ञानसे ही आत्मनिधि मिलती है और कुमार्गसे हटनेकी स्वयं बुद्धि होती है (गंधोत्कट सेठसे) मैं तुम्हारे इस परमोपकारी वालकको विद्या पढ़ाना चाहता हूं, इसमें आपको क्या राय है ?

गंधोत्कट—(खुश होकर) महाराज ! धन्य है मुझे और

इसे, जो आपका ऐसा सुंदर भाव हुआ, मुझे मंजूर है और यह बालक आपकी सेवामें तयार है। (जीवन्धरको वह साधु पढ़ाता है और अल्प समयमें ही वह उसे सर्व विद्याओंमें अगुआ कर देता है)

साधु—(जीवंधरको सब विद्याओंमें पारंगत हुआ जान) वत्स! मैं आज तुझे एक कथा सुनाता हूं उसे तू ध्यानपूर्वक सुन और बहुतसे भेदोंको समझ। एक लोकपाल नामका विद्याधर काई निमित्त पाकर मुनि होगया, मगर कर्मोदयसे उसे भस्मव्याधि नामका रोग होगया जिससे वह धर्मभ्रष्ट हो इधर उधर खानेकेलिये भटकता फिरा, लेकिन उसका वह रोग कहीं पर शमन न हुआ। अन्तमें उसका वह रोग तुझ महाभाग्यके कर-कमलके खानेमात्रसे शांत हो गया। फिर उसने तुझे उस महान उपकारकी कुछेक पूर्ति निमित्त विद्वानोंमें अग्रेसर बना दिया। तुम राजा सत्यंधरके प्रतापी पुत्र जीवंधर हो, तुम्हारे पिताको इस दुष्ट काष्ठांगारने विश्वासघात कर मार राज्य लिया और तुम्हारी माता भी इसी कारणसे आज दारुण दुःखोंका अनुभव कर रही है। इत्यादि सारी कथा सुनादी।

जीवंधर—(क्रोधमें आकर)

दुष्ट काष्ठांगार तू ने क्या पिता मेरा हना।
रे कृतघ्नी! आज तू अन्यायसे राजा बना॥
दुःख दीना मातको तुझको न छोडूं अब कभी।
तुझे मैं यमलोक भेजूं रे दुराचारी अभी॥

अरे पापी, बेईमान, दगाबाज, नालायक ! देख मैं तेरे किये का कैसा फल चखाता हूं । (कहकर जानेको तयार होता है)

साधु—(रोककर) पुत्र ! अभी यह विचार ठीक नहीं हैं। इस समय धैर्य धरना ही ठीक है । अभी समय उपयुक्त नहीं है।

जीवंधर—(हाथ जोड़) .

पूज्यवर ! जाने मुझे दीजे अभी मत रोकिये ।
उस दुराचारी कृतघ्नीपर दया नहि कीजिये ॥
अभी जाकरके लऊं मैं खबर उस बदकारकी ।
महापापी ! दुष्ट उस निर्लज्ज काष्टांगारकी ॥

हे गुरुवर्य ! मुझे न रोकिये, मेरी आंखोंमें खून बरस रहा है।

साधु—हे महाभाग । मेरी बात मान और अभी इस विषय पर मत दे ध्यान । जब समय आयगा तब इसका दंड इसे खुद मिल जायगा ।

जीवंधर—हे पूज्य ! आपका कहना आपके विचारानुसार ठीक है मगर यह बात क्षत्रियधर्मसे विपरीत है। मुझे न रोकें मेरी शांतिका उपाय उस दुष्टका निग्रह करना मात्र है ।

साधु—(स्वगत) यों तो ये मानता नहीं दीखता मगर कोई ऐसा उपाय करूं जिससे यह कुछ दिनके लिये ठहर जाय। इसमें इसीका भला है । (प्रगट) प्रियवत्स ! मैंने तुम्हें पढ़ाया है मगर अभीतक तुमने मुझे गुरुदक्षिणा नहीं दी है। सो देना चाहिये ।

जीवंधर—हे पूज्य! आप क्या चाहते हैं? मैं आपकी हर तरह सेवा करनेको तयार हूं।

साधु—मैं सिर्फ गुरुदक्षिणा यही तुझसे लेता हूं कि तू अभी एक वर्ष तक युद्ध मत कर, बाद जो तुझे उचित दीखे करना।

जीवंधर—(कुछ सोचकर) हे पूज्यपाद! मैं आपकी इस आज्ञाको मानता हूं। आपके कहे अनुसार एक वर्ष तक शांति रखता हूं।

साधु—(खुश होकर) हे विनीत! चिरंजीवि रहो और नीतिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करो। मैं अब तपोवनको जाता हूं और इन अनादिकालसे लगे हुए दुष्ट कर्मोंको भगाता हूं।

जीवन्धर—(उदास होकर) हे पूज्यवर! रहिये और कुछ दिन ओर कृपादृष्टि कीजिये। मेरे इस वर्तावसे रुष्ट न हूजिये। मुझे क्षमा कीजिये। मैं चरणोंमें गिर माफी मांगता हूं। (चरणोंमें गिरता है)

साधु—(उठाकर) वत्स! तू समझदार है, तुझे अधिक समझानेकी क्या दरकार है? न मुझे रंज है न क्रोध है किन्तु अपने स्वरूप पानेकी मुझे इच्छा है। वह शुभेच्छा यहां पर रह कर पूर्ण नहीं हो सकती। जो नियोग था सध गया। अब मुझे रहना और तुझे रोकना मुनासिब नहीं है।

जीवन्धर—(आखोंमें आसूं भर कर) हे महानुभाव!

क्या आप मुझे सचमुच ही छोड़कर चले जांयगे ? क्या मेरा भाग्योदय इतना ही था ? (सुस्त चित्रामवत् खडा रहता है)

साधु—प्रिय पुत्र ! तू नहीं जानता है कि यह मोह ही जीवों-के असली सुखका घातक है। क्या इसे हटानेका उपाय नहीं करना चाहिये ? मैं जाता हूं। (कहकर साधु महाराज चले जाते हैं। जीवंधर वहीं उसी अवस्थामें खडा रहता है। उसे यह भी ज्ञान नहीं रहता कि मैं कहां हूं) [यवनिका पतन]

अंक दूसरा—सीन चौथा।

नन्दगोप ग्वालेका मकान ।

सब ग्वाले बैठे आपसमें बातें कर रहे है ।

नन्दगोप—(ग्वालोंसे) हम लोगोंने गायोंके छिडनेकी खबर राज्यमें भी करदी है मगर सुनते हैं वहांसे भी कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ। राज्यकी सेना हार कर भाग आई। अब क्या उपाय करना चाहिये जिससे हमारी गायें उन दुष्टोंसे वापिस आ जांय अहा ! अरे वह राज्य कहां गया जिसके सामने कोई आंख उठा कर भी देख नहीं सकता था ?

एक ग्वाला—हम सबोंमें आप हीं बुद्धिमान हैं, कोई ऐसा उपाय सोचिये जिससे हमारी आजीविका न चली जाय, नहीं तो हम सब मर ही जांयगे। हाय ! हाय ! ऐसा अन्याय तो अभी तक देखनेमें नहीं आया। मेरे तो गायोंके चले जानेसे प्राण सूख रहे हैं।

नन्दगोप—मेरी समझसे सारे शहरमें यह घोषणा फिरा देना ठीक होगा कि "जो कोई वीर हम ग्वालोंकी गायें व्याधोंसे वापिस ला देगा उसको मैं (नन्दगोप ग्वाला) सात सुवर्ण कन्याओंके साथ साथ अपनी सुन्दर कन्या अर्पण कर दूंगा"।

सब ग्वाले—हां ठीक है, ठीक है, यही बन्दोबस्त कीजिये, हम सब लोग इसमें सहमत हैं और आपकी इस उदारताके लिये अनेक धन्यवाद देते हैं।

नन्दगोप—अच्छा ड्योढीवानको बुलाओ और सारे शहर में उक्त घोषणा फिराओ देरी करनेका काम नहीं है (ड्योढीवान का प्रवेश)

ड्योढ़ीवान—कहिये हजूर क्या आज्ञा है ?

नन्दगोप—जाओ और सारे शहरमें यह घोषणा कर आओ कि "जो कोई वीर हम ग्वालोंकी गायें व्याधोंसे वापिस ला देगा उसको नन्दगोप ग्वाला सात सुवर्ण कन्याओंके साथ साथ अपनी सुन्दर कन्याको अर्पण कर देगा"।

ड्योढीवान—जी हजूर। मैं अभी जाकर उक्त घोषणा फिरा आता हूं। (कहकर ड्योढीवानका चला जाना)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन पांचवा

जीवंधरका महल

जीवंधर अपनी मित्र-मंडली सहित बैठा है।

ड्योढ़ीवानका प्रवेश—

(ड्योडीवान एक घोषणा कर रहा है)

जीवंधर—(द्वारपालसे) देखो तो सही यह ड्योढ़ीवान क्या कह रहा है? इसे बुलाकर सब हाल दर्याफ्त करो। (द्वारपाल ड्योढ़ीवानको बुला लाता है और सब हाल कहनेको कहता है)

ड्योढ़ीवान—हे महाभाग! यह घोषणा नन्दगोप ग्वालेकी तरफसे की गई है कि हमारी गायें भीलोंने ले लीनी हैं जो वीर पुरुष उन दुष्टोंसे हमारी गायें वापिस ला देगा उसे मैं अपनी पुत्रीके समान सात सुवर्ण कन्यायें दहेजमें देकर अपनी प्रिय पुत्रीको विवाह दूंगा। जब राज्यकी सेना हारकर भाग आई तब अपनी आजीविकी प्राप्तिके लिये यह नंदगोप द्वारा घोषणा की गई है। देख कौनसा वीर व्याधोंको जीतकर यह महान उपकार करता है और अपना वीरत्व दिखलाता है।

जीवंधर—अच्छा जाओ, बन्दोबस्त होजायगा। हाय राज्य तेरा आज राजत्व खोगया। आज तेरेमें गीदड़ोंका वास होगया।

नष्ट है वह राज्य जिसमें गीदड़ोंका वास है।
भ्रष्ट है सारी प्रजा जिस राज में नहि सांस है॥

कष्ट पाते है सभी इक राज्यके अन्यायसे।
दुष्ट, पापी, निर्दयी, कमजोर शाहंसाहसे॥

मैं जाता हूं और देखता हूं कि उनमें कितना जोर है। प्याजियोंने झूठा ही शोर मचा रक्खा है (कहकर जीवन्धरका व्याधोंको पराजयार्थ चला जाना) यवनिका पतन।

—:o:—

अंक दूसरा–सीन छठवां।

जंगल।

व्याधोंका धनुष वाण लिये बैठा दिखाई देना।

(जीवन्धरका खड्ग लिये प्रवेश)

जीवंधर—रे दुष्ट व्याधो! तुमने यह क्या ऊधम मचा रक्खा है! तुम लोग क्यों प्रजाको दुख दे रहे हो? आओ मेरे सामने, मैं भी तो देखूं कि तुम्हारेमें कितना बल है? (जीवंधर की यह क्रोध भरी बातोंको सुनते ही सभी भील अपना अपना धनुष वाण लेकर लड़ने लगते हैं। थोड़ी देर तक तो युद्ध होता है मगर बादमें जैसे गरुड़को देखकर सर्पोंका समूह अपनी जान बचानेके लिये भाग जाता है वैसेही स्वामीकी ललकार मात्रके सुनते ही बहुतसे व्याधे तो भाग जाते हैं और बाकीके आकर जीवन्धरके चरणोंमें पड़ जाते हैं)

जीवंधर—(व्याधोंको नम्र देख) क्या तुम लोग और उपद्रव करोगे?

व्याधे—(हाथ जोड़) नहीं महाराज। नहीं महाराज !! इस हमारे गुरुतर अपराधको क्षमा कीजिये, आगे कभी भी ऐसा न होगा।

जीवंधर—(शांत होकर) अच्छा यह तुम्हारा पहिला कसूर है इससे माफ कर देते हैं। याद रखना तुमने फिर भी कोई ऐसी धृष्टताकी तो फिर तुम्हारी जान न वचेगी ! सवका विनाश कर दिया जायगा।

व्याधे—(हाथ जोड) नहीं होगा, ऐसा अपराध अव कभी भी न होगा महाराज ! यदि हमारा आप कभी भी कसूर देखें तो जो आप मुनासिव हो करें।

जीवंधर—अच्छा चलो और ये सभी गायें वापिस राजपुरी को ले चलो और ग्वालोंको दे दो।

व्याधे—जो आपकी आज्ञा। (कहकर कुछ एक व्याधे जीवंधरके साथ साथ गायोंको लेकर चल देते हैं) यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन सातवां।

नन्दगोपका मकान।

सभी ग्वाले बैठे हैं।

(मय गायोंके व्याधोंके साथ जीवन्धरका प्रवेश)

नन्दगोप—(गायोंको देख) अहा ! धन्य है, वीरता इसीका नाम है जो वक्त पर काम आती है। वैसे तो सभी वीर हैं-मगर

असली वीरत्व काम पडने पर ही जाना जाता है। (सब ग्वाले कुछ आगे बढ जीवन्धरके पेरोंपर गिर पडते हैं।

जीवन्धर—(उठाकर) उठो और अपनी अपनी गायोंको संभालो, अब आगेसे ये ऐसा कोई भी उपद्रव न कर सकेंगे।

नन्दगोप—(जीवन्धरको उच्चासन पर बिठाकर) धन्य है प्रभो! आपको धन्य है। यह सब आपकी वीरतासे हम लोग आजीविका फिर कर देख रहे हैं। प्रभो! हम लोग गायोंके चले जानेसे मरही चुके थे।

सब ग्वाले—धन्य है, धन्य है! इस महान उपकारीको आज धन्य है। जिसकी बदौलत हम अपनी गायोंको आज घर बैठे देख रहे हैं।

नंदगोप—(हाथ जोड) हे प्रभो! मेरी उक्त प्रार्थनाको मंजूर कीजिये।

जीवन्धर—अच्छा! अभी तो हम जाते हैं, जब ठीक समय होगा तब हम अपनी मित्रमंडली सहित आजावेंगे।

नन्दगोप—जो आपकी आज्ञा। (ज्योंही जीवन्धर चलते हैं त्योंही सब व्याधे हाथ जोड कर खडे हो जाते हैं।

व्याधे—(हाथ जोड) तो प्रभो! हम लोगोंके लिये क्या आज्ञा होती है?

जीवन्धर—तुम लोग अब अपने अपने घरको चले जावो। (कह जीवन्धर चले जाते हैं और उनके पीछे व्याधे भी चल देते हैं)

नंदगोप—(सब ग्वालोंसे)

करो मराडपकी तयारी आज शुभ दिन आ गया।
सात सोनेकी बनाओ पुतलियां दिन आ गया॥
धन्य है पुत्री मेरी उस वीरकी रमणी बने॥
करो उत्सव प्रेमसे देखो लग्न शुभ कर्त्त बने॥

(सभी ग्वाले हर्षित होते हैं और मराडप बनाने, सुवर्ण कन्यायें बनवाने आदिमें लगजाते हैं मराडप तयार हो जाता है। जीवन्धर अपनी मित्रमण्डली सहित आते हैं) बाजोंकी मधुर ध्वनि होती है)

नन्दगोप—(सबको यथायोग्य स्थान पर बिठाकर)
धन्य है तुझ वीरवरको क्या करें तारीफ हम।
आपके उपकारको क्या भूल सकते है जु हम॥
भाग्यशालिन ! तुच्छ मेरी भेट ये स्वीकारिये।
आपके ही योग्य है पुत्री मेरीको व्याहिये॥

हे प्रभो ! इस मेरी विनती पर ध्यान दीजिये। मैं किस लायक हूं। आपका एक अदना सेवक हूं।

जीवंधर—बुद्धिवर ये आपका कहना मुझे मंजूर है।
मगर सुनलो बात जो इक न्यायके अनुकूल है॥

नंदगोप—(हाथ जोड़कर) कहिये श्रीमान्! क्या आज्ञा है?

जीवंधर—आपकी पुत्री सुहृद-पद्मास्यके ही योग्य है।
सब तरहसे मित्र मेरे के सुनो ये भोग्य है॥
युग्म हममें तुम हमेशा जानलो एकत्व है।
जाति पांति सभीसे उसका उसके ऊपर सत्त्व है॥

दोहा—गात्र मात्रसे भिन्न हैं, दिलसे हैं हम एक।
होय मित्रकी मित्रता, ये ही सहज विवेक॥

नंदगोप—आपकी आज्ञा मुझे सब तरह मंजूर है।
उसीके अनुसार यह करना मुझे दस्तूर है॥
आप हैं सिरताज मेरे जो कहें सो ही करूं।
है मुझे मंजूर पुत्री इन्हीको अर्पण करूं॥

(तनुसार नंदगोप अपनी पुत्रीका पद्मास्यके साथ विधिपूर्वक विवाह कर देता है। दहेजमें सात सुवर्ण कन्याओंके साथ साथ और भी अतुल सम्पत्ति देता है, बाद सब चले जाते हैं)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन आठवाँ

सेठ श्रीदत्तका महल

(अकेले श्रीदत्त अपने कमरेमें टहल रहे हैं)

श्रीदत्त—हाय! इतनी जिन्दगी खोई न कुछ पौरुष किया।
बाप दादोंका कमाया धन सभी गारत किया॥
अब मुझे परदेश जाकर धन कमाना चाहिये।
व्यर्थमें ही बैठ अब नहिं धन गमाना चाहिये॥

बिना धन कमाये जीवन निस्सार है, न आबरू और न इज्जत है। मुझे भी अपने पौरुषसे धन कमाना चाहिये। बाप दादोंकी दौलत पर ही न रहना चाहिये। (भीतरसे सेठानी का आना)

सेठानी—(सेठ को चिन्तितसा देखकर)

आज किस चिन्तामें चिन्तित होरहे स्वामी कहो।
जो बुलानेपर न आये हाल ये सारा कहो॥
आपके चहरे पै छायी ये उदासी आज क्यों ?
क्या विचारा आपने उसको छिपाते नाथ क्यों ?

हे स्वामी! आजसे पहिले तो आपका ऐसा सुस्त चहरा देखनेमें कभी भी नहीं आया था।

श्रीदत्त—प्रिये! फिक्र कुछ नहीं है, सिर्फ मैं विदेश जाना निश्चित कर चुका हूं।

सेठानी—क्यों ?

श्रीदत्त—धनार्जनके लिये।

सेठानी—क्या धन यहां नहीं कमा सकते ?

श्रीदत्त—क्यों नहीं, मगर विदेश जानेसे बहुत जल्दी धन पैदा होता है।

सेठानी—तो क्या यहांपर धनार्जन देरीसे होता है ?

श्रीदत्त—हां।

सेठानी—तो देरी ही से सही, इसमें इतनी जल्दी करनेकी क्या जरूरत है ?

श्रीदत्त—धन और धर्म जितनी जल्दी हो सके ग्रहण करना चाहिये।

सेठानी—ठीक है, मगर अपनी जान जोखिममें डालना ठीक नहीं।

श्रीदत्त—जोखिम ! कैसी जोखिम !

सेठानी—यहां और वहां दोनों जगहोंकी जोखिम ! क्या परदेशमें सुख मिलता है। "परदेश कलेश नरेशनको" क्या यह कहावत झूंठ है ?

श्रीदत्त—झूंठ, बिलकुल झूंठ।

सेठानी—स्वामी ! मत जाइये और यहीं पर धन कमाइये।

श्रीदत्त—प्रिये ! मैं बहुत जल्दी आऊंगा तू निश्चय कर। मुझे आनेमें देरी न लगेगी।

सेठानी—तो क्या अकेले ?

श्रीदत्त—हां, अकेला ही जाऊंगा।

सेठानी—क्या आप न मानेंगे ? अच्छा जाइये मगर आनेमें देरी न कीजिये।

श्रीदत्त—हां प्यारी ! मैं थोड़े ही दिनोंमें आता हूं, देरीका कोई कारण नहीं है।

(कहकर सेठका द्वीपान्तरके लिये रवाना होजाना। सेठानी का वहीं खड़ा रहना) यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन नवमाँ

समुद्रका किनारा

श्रीदत्तके आते समय जहाज फट जाता है और यह काष्ठावलंबन से पार पर सुस्त बैठा दिखाई देता है।

श्रीदत्त—(उदासीनतासे) अहा ! कर्मकी विचित्र गति है। देखो ! मैने कितना धन कमाया मगर पापोदयसे सब समुद्रमें डूब गया। यह मूर्ख जीव व्यर्थ ही में चिन्तित होता है, लेकिन विना पुण्यके एक पैसा भी नहीं पासकता। (नेपथ्यमें, कुछ दूरसे) सभी जीव अपने पापों का फल भोगते हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

श्रीदत्त—(सामने नजर उठाकर) कौन था जो अभी २ कुछ कह रहा था ? या यों ही मैं कोई स्वप्न देख रहा था !

पथिक—(अदृश्य होकर) नहीं, स्वप्न नहीं देखते थे, जो देखते थे वह सब ठीक था।

श्रीदत्त—(चकित होकर) क्या आश्चर्य है ? आवाज सुनता हूं मगर किसीको देखता नहीं। यह क्या बात है कुछ समझमें नहीं आती।

पथिक—(धीरे २ सामने आता हुआ) आप यहां क्यों बैठे हुये हैं ?

श्रीदत्त—पाप कर्मोंके फलोंको देखनेके लिये।

पथिक—कैसे ?

श्रीदत्त—सब कमाया हुआ धन जहाजोंके फट जानेसे नष्ट होगया, किन्तु मैं इस दारुण दुःखको देखनेकेलिये ही यहांतक जीता जागता आगया हूं।

पथिक—आप बुद्धिमान हैं।

श्रीदत्त—मगर धनके गमसे परेशान हैं।

पथिक—लेकिन कर्मोदयसे क्या वश चल सकता है?

श्रीदत्त—ठीक है। मगर सोच तो है।

पथिक—सोच करनेसे क्या होगा?

श्रीदत्त—कुछ दुःखका भार हलका होगा।

पथिक—आपकी यह भूल है।

श्रीदत्त—तो आप ही बताइये कि इस दुखके मिटनेका और क्या मूल है?

पथिक—संतोष कीजिये। आपका सब दुख इसीसे दूर हो जायगा।

श्रीदत्त—किस तरह संतोष किया जाय?

पथिक—जिस तरह बने उस तरह।

श्रीदत्त—इस समय कुछ बनता नहीं दीखता।

पथिक—ये धन-सम्पत्ति, यौवन, शरीरादि सब विनाशीक हैं।

श्रीदत्त—ठीक है।

पथिक—और यह मोह ही इस जीवके सुखका घातक और दुःखका दाता है।

श्रीदत्त—यह भी ठीक है।

पथिक—यह सारा संसारका खेल अपनेसे पर है।

श्रीदत्त—आप सत्य कह रहे हैं।

पथिक—आप अपनेको सम्हालिये और अपने निजरूपको देखिये।

श्रीदत्त—(कुछ देर बाद) अहा! मित्र! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। वास्तवमें यह सारा संसारका खेल पुण्य-पापके ऊपर है, इससे और आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह जीव व्यर्थमें दुखी होता है और अपना आत्म कल्याण नहीं करता।

पथिक—अब आप चलिये।

श्रीदत्त—कहां?

पथिक—आपकी मर्जी हो वहां।

श्रीदत्त—अच्छा जहां आपकी मर्जी हो वहां ही चलिये, मैं तयार हूं। [पथिक (विद्याधर) श्रीदत्तको अपनी विद्याके बलसे निद्रित कर देता है और उसी अवस्थामें उसे विमानमें बिठा चल देता है। यहांपर उसी कृत्रिम विमान पर दोनोंका उधर ऊपर उठना और इधर परदेका धीरे धीरे गिरना]

यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन दशवां।

उपवन।

श्रीदत्त और पथिकका खडा दिखाई देना। सामने
मय राजाके दरबारका दीखना।

पथिक—(हाथ जोड़कर) मुझे आशा है कि मेरे इस अपराधपर क्षमा प्रदान करेंगे।

श्रीदत्त—क्यों ?

पथिक—मैंने आपको धोखा दिया है।

श्रीदत्त—किस तरह ?

पथिक—मैंने ही आपके जहाजोंको नष्ट किया और इतनी दूर बिना आपकी आज्ञाके तथा बेहोश करके केवल अपने स्वार्थके लिये ले आया।

श्रीदत्त—(चौंक कर) क्या बुरे अभिप्रायसे ?

पथिक—नहीं, किंतु—

श्रीदत्त—(जल्दीसे) तो मुझे इसप्रकार लानेका सबब ?

पथिक—अपने स्वामीके उपकारके लिये।

श्रीदत्त—आपका स्वामी कौन है और वह कहां पर है ?

पथिक—हमारे स्वामीसे आपका बहुत पुराना संबंध है। वे आपके मित्र हैं।

श्रीदत्त—हमारे मित्र और हमें उनकी मालूम नहीं। कैसा ताज्जुब है !!

पथिक—आपके घरानेसे और इस घरानेसे पुराना सम्बन्ध है।

श्रीदत्त—साफ साफ कहिये, क्या बात है!

पथिक—आपके जहाज नष्ट नहीं हुये हैं, किंतु यह चेटक मेराही किया हुआ है, अन्यथा आप यहांपर कैसे आते। यह विद्याधरोंका देश है (सामने हाथ करके) और यह अति मनोज्ञ सामने नित्यालोकापुरी नगरी है। यहांका राजा जितशत्रु बड़ा धर्मात्मा और बुद्धिमान है। उसकी लड़की गन्धर्वदत्ता बड़ी बुद्धिमान और चतुर है। निमित्तज्ञानियोंके बताये अनुसार इसे राजपुरीमें जो वीणावादमें जीतेगा वही इसका पाणिग्रहण करेगा। आपको उस लड़कीको सौंपनेकेलियेही बुलाया गया है और आपको इसीलिये इतनी तकलीफ दी गई है।

श्रीदत्त—(प्रसन्न होकर) मुझे धन्य है जो मैं आज अपने पुराने मित्रसे मिलूंगा। यदि आप मुझे न लाते तो इस स्वर्गसमान नगरीको मैं कैसे देख पाता और अपने हितैषीसे क्योंकर मिलता। चलिये जल्दी चलिये। (बातें करते करते दोनों जने महाराज जितशत्रुके दरबारमें पहुँच जाते हैं। श्रीदत्त वहांकी विभूति देख आश्चर्य करता है)

पथिक—महाराजाधिराज! ये आपके परंपरागत मित्र श्रीदत्त सेठ आये हैं, इनसे आप मिलें और जो कहना सुनना हो कहें।

राजा—(उठकर) अहा! आज मेरा बड़ा पुण्योदय है जो

आपके दर्शन कर रहा हूं (सेठका हाथ पकड़ अर्द्ध सिंहासनपर बिठाता है)

श्रीदत्त—(बड़े प्रेमसे) और मेरा क्या कम भाग्योदय है जो सहजहीमें आपके दर्शन कर रहा हूं। क्या यह कम सौभाग्यकी बात है ?

राजा—आपको सारा समाचार तो मालूम होही गया होगा कि—ज्योतिषियोंके बताये अनुसार आपके ही द्वारा मेरी पुत्री गन्धर्वदत्ताका राजपुरीमें स्वयंवर होगा और वहां जो इसे वीणावादमें जीतेगा वही इसका पति होगा। इसीलिये आपको इतना कष्ट पहुँचाया गया है, कृपया इसे माफ करेंगे।

श्रीदत्त—(पथिककी तरफ इशारा करके) मुझे इनकी बदौलत सारा समाचार मालूम हो गया है। मैं आपकी पुत्रीको ले जाऊँगा और विधिपूर्वक विवाह करूंगा, आप निश्चिंत रहें। मुझे आज जो आनन्द आपके दर्शनोंसे हो रहा है उसे मैं अपनी जबानसे बयान नहीं कर सकता।

राजा—(मन्त्रीसे) इन्हें ले जाकर स्नानादि कराओ और रनवासमें खबर करो कि हमारे प्रबल पुण्योदयसे सेठ श्रीदत्तजी आ गये हैं। किसी प्रकारकी चिंता न करो, ये पुत्रीको ले जांयगे और वहां विधिपूर्वक विवाह करेंगे। (मन्त्रीका चला आना)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन ग्यारवां ।

स्वयंवर-मंडप

बडे भारी सजे मंडपमें सेठ श्रीदत्तका तथा अनेक राजकुमार सेठकुमारोंका यथायोग्य बैठा दिखाई देना ।

(प्रथम परियोंका नाचने और गानेके लिये आना)

गाना परियोंका

तर्ज—तेरी कुदरत है........

कैसी महिमा है भारी जाकी शोभा अपारी
मोपै बरनी न जावे संवरिया आज ॥ टेक ॥
प्यारी खुशियां मनावो सबके मनको रिझावो
दे दे तालो के गावो औ नाचो आज ॥ १ ॥
कैसी रंगत है भारी फूली कचनार प्यारी
गेंदा गुलशनकी क्यारी अजी वाह ! वाह ! आज ॥२॥
कैसी कोयल पुकारे कूहि, कूहि, कूहि, कूहि,
बोलै प्यारा पपैया पिय ! पिय ! आज ॥ ३ ॥
जैसी उपवन बहार वैसी दीखै अवार
शोभा छाई अपार यहां मंडपमें आज ॥ ४ ॥

(गाना खतम होते ही भीतरसे बिजलीके समान सभाश्रित जनोंकी आंखोंमें चकाचौंध पैदा करती अनेक वस्त्राभूषणों कर सुशोभित गन्धर्वदत्ताका अपनी सहेलियोंके साथ प्रवेश)

गंधर्वदत्ता—(योग्य स्थानपर बैठ और सामने वीणा रख

कोई बुद्धिवर इस वीणाकी परीक्षा करे कि यह किस जातिकी है। इसकी परीक्षा होने पर पीछे और बात छेड़ी जायगी।

(यह सुन कर अनेक राजपुत्र और सेठपुत्र क्रम क्रमसे आते हैं किंतु वीणाको देख उसके बारेमें कुछ भी नहीं कह सकते, आखिर सभी शर्मिंदा होकर वापिस चले जाते हैं)

गंधर्वदत्ता—क्या इस सभामें कोई भी वीणा बजानेवाला तो एक तरफ रहा, जाननेवाला तक भी नहीं है!

जीवंधर—(उठ कर और गन्धर्वदत्ताके सामने सिंहासन पर बैठ कर) हे सुन्दरि! कहो तुम वीणाके विषयमें क्या पूछती हो?

गंधर्व०—मेरा यही प्रश्न है कि यह वीणा किस जाति-की है?

जीवंधर—[वीणाको हाथमें लेकर] सुबुद्धे! यह वीणा सदोष है।

गंधर्व०—इसमें क्या दोष है?

जीवंधर—यह भिन्नस्वरा है। इसकी जाति स्वरासंकलित है। इसका स्वर एक जगपर नहीं चल सकता।

गंधर्व०—[दूसरी वीणा रख कर] हे विद्वद्वर! यदि यह वीणा सदोष है तो लीजिये इस मनोज्ञ वीणाको बजा कर अपनी बुद्धि-प्रखरता दिखाइये।

जीवंधर—नहीं, यह भी सदोष वीणा है।

गंधर्व०—[खुश होकर] कैसे?

जीवंधर—[बजा कर] देखो यह अद्भुत वीणा है ।

गंधर्वा—इसका ऐब ?

जीवंधर—यह वीणा देखनेमें तो अति सुन्दर है, मगर इस-की लकड़ी एकदम खराब है [कुछ बजाकर] देखा ! कैसी भद्दी आवाज निकलती है । [परस्पर एक दूसरेकी आंखें मिल जाती हैं और दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं]

गंधर्वा—[खुश होकर तीसरी वीणा पासमें रख] लीजिये यह वीणा अति उत्तम और चित्तको मोहित करनेवाली है ।

जीवंधर—[देख कर] हां, यह सुघोषा नामक वीणा वास्तवमें अच्छी चीज है । [बजा कर] देखा ! इसमेंसे कैसा सुन्दर सुरीला स्वर निकलता है । अच्छा कहो ! गाना गाऊँ या इसके सभी भेदोंको सुनाऊँ ?

गंधर्वा—(प्रेमपूर्वक)

आप यदि वीणा बजाना और गाना जानते ।
तो बजाकर हुनर अपना क्यों नहीं दिखलावते ॥
भक्तिरसमें पूर हो रावण बजाई बीन जो ।
वही बीन बजाय गाओ सब सभा लवलीन हो ॥

जीवंधर—हे कृषाङ्गे ! मैं बजाऊं और गाऊं गान सुन ।
दोष गुणकी करि परीक्षा विषय है ये अति गहन ॥

(जीवन्धर ज्योंही वीणा बजाते हैं त्योंही चारों ओरसे वाह वाह ! ! की आवाजें आती हैं)

गाना—

प्रभु तेरी छवी मेरे दिलमें वशी मैंने पाया त्रिलोकीके राज को, हां ॥ टेक॥ प्रभु तेरे मन्दिर आया, लखि चैत्य भवन शिर नाया, मारे हर्षोंके व्यापी है तनमें खुशी ॥ मैंने ॥ वसु द्रव्य सजाकर लाया, करि दर्शन पाप पलाया। तेरे देखेसे मेरी कुदृष्टि नशी ॥ मैंने ॥ २ ॥ जल चन्दन अक्षत लाया, अरु पुष्प अनेक सजाया। तेरे चरणोंमें व्यंजन चढाऊं रसी ॥३॥ दीपक अरु धूप चढाऊं, भरि थाल फलार्घ सजाऊं। तेरे चरणोंमे है मेरी दृष्टि फंसी ॥ मैंने ॥४॥ जो भविजन द्रव्य चढाते, वे नियत मोक्ष फल पाते। तेरी सूरत हमारे है दिलमें वशी ॥ मैंने ॥ ५ ॥

गंधर्व—[अति आशक्त होकर] अहा ! गाना इसका नाम है। विद्या वही है जो समय पर काम आवे। [गंधर्वदत्ता अपने दोनों हाथोंसे बडे प्रेमसे जीवन्धरके गलेमें वरमाला डाल देती है, उसी समय बाजोंकी मधुर ध्वनि होती है। [काष्टांगार कुछ एक राजकुमारोंसे कानाफूंसी कर रहा है उन्हें समझा रहा है]

काष्टांगार—[सब राजपुत्रोंसे एक तरफ] लानत है तुम्हारे क्षत्रीपन पर, मर जावो चुल्लू भर पानीमें डूब कर, अच्छा तुमने नाम बदनाम किया। अब भी देखते हो, तुम्हे शर्म नहीं आती !

राजपुत्र—कहिये आपकी क्या आज्ञा है ?

काष्टांगार—आज्ञा ! आज्ञा ! ! क्या अभी तक नहीं समझे हो.........

राजपुत्र—नहीं समझे ! आप साफ साफ कहिये क्या बात है ?

काष्ठांगार—साफ २। क्या इस जाहिर बातका भी खुलासा करना पडेगा। क्या इतना भी नहीं समझ सकते ?

राजपुत्र—भला विना खुलासा किये कैसे समझमें आयगा, क्या आपके अन्तरंगकी बातें हम जानते हैं। कहिये ! आप क्या चाहते हैं ?

काष्ठांगार—[झुंझलाकर] अच्छा सुनो, तुम्हारे सामने इस क्षत्रिययोग्य कन्याको यह रुई कपास घी आदि वेचनेवाला वणिक ले जाय और तुम इस अन्यायको योंही बैठे देखते रहो क्या यह शर्मकी बात नहीं है ? क्या इसमें तुम्हारा अपमान नहीं हो रहा है ? क्या ऐसा स्त्रीरत्न तुम्हें छोड देना चाहिये ?

राजपुत्र—हम आपका मतलब अब बखूबी समझ गये हैं हम लोग अभी जाते हैं और उस परम सुन्दरी कन्याको अभी ले आते हैं। यह कौनसी बडी बात है [कहकर कुछ एक राजपुत्र अपनी सेना लेकर जीवन्धरके पास जाते हैं। उधर वह भी पर-चक्र आया हुआ देख शमशेर हाथमें लेकर खडा हो जाता है]

राजपुत्र—[जीवन्धरसे] यह तुझ वणिकयोग्य कन्या नहीं है। या तो तू इस कन्याको हमें राजीसे दे दे नहीं तो लडकर अपना क्षत्रीपन प्रगट कर, अन्यथा इस स्त्रीरत्नको तू नहीं पा सकता।

जीवंधर—(क्रोधित होकर) क्या गीदडोंका झुंड सिंहको धमकाने आया है ? क्या तुमने लडनेको कोई हलुआ पूडी समझ रखा है जो चट खालिया जाता है ? अच्छा आओ ! हम

तुम्हारे क्षत्रीपनको अभी देख लेते हैं कि तुममें कितना पानी है ? तुम्हारे लड़नेकी जो खुजली पैदा हुई है उसका इलाज अभी कर दिया जाता है ।

राजपुत्र—हां, यही ठीक होगा । (कहकर सभी राजपूत जीवंधर पर टूट पड़ते हैं, मगर जैसे एक कंकड़के फैंकनेसे सारे कागले उड़ जाते हैं वैसे ही ठीक स्वामीकी ललकार मात्रसे सभी कुमार भाग जाते हैं कोई भी नहीं ठहरता । स्वामी जीत कर मंडपमें आजाते हैं । उधर श्रीदत्त सभी विवाह की तय्यारियां कर लेता है । दर्शकोंकी भीड़ लग जाती है ! श्रीदत्त सेठ गंधर्वदत्ताका जीवन्धरके साथ विधिपूर्वक विवाह कर देता है । परियां मुबारक बादी गानेको आजाती हैं)

गाना-परियोंका ।

आज प्यारी देखो कैसी ये आई बहार ॥ टेक ॥
दूल्हा औ दुलहिन खुशी रहें दोनों, आशीश है ये हमार ॥आज॥
जुग २ जीवो ये जोडी सयानी, फूलें फलें ये कुमार ॥ आज ॥
पावें ये सुःख दिनोंदिन दम्पति, धनकी न होवे शुमार ॥आज॥
दुःख हरें सबका सुख देवें, होवें धरमका विचार ॥ आज० ॥

(गाते २ परियोंका चला जाना) यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन बारहवां।

नदीका किनारा।

कुछ ब्राह्मण लोग होम करनेकी तयारी कर रहे है। सब सामग्री रक्खी हुई है। एक तरफ कुछ स्त्रियां खडी हुई हैं। जीवंधर भी अपने मित्रोंसहित कुछ दूर पर क्रीडा कर रहे हैं।

जीवंधर—(होमद्रव्य उच्छिष्ट करनेसे ब्राह्मण कुत्तेको मार रहे हैं, यह दृश्य देख अपने मित्रोंसे) दौडो! दौडो!! देखो इन दुष्टोंने कुत्तेको मारडाला (सबका भाग कर कुत्तेके पास आना) अह ! देखो मूर्ख प्राणियोंकी कैसी अज्ञ चेष्टायें होती हैं जो प्राणी मात्रको दुख पहुंचाती हैं। (कुत्तेकी परीक्षा करके) अहा! इसका बचना मुशकिल है, इसकी जान जानेमें एक पल है। अब इसकी गति सुधारनी चाहिये। (स्वामी कुत्ते के कानमें ज्यों ही मंत्र सुनाते हैं ज्योंही वह मृत्युको प्राप्त होता है, उस मन्त्रके प्रभावसे स्वर्गमें बडी ऋद्धिधारी देव होता है। वह देव अवधिज्ञानसे यह सारा वृत्तान्त जान लेता है और शीघ्र ही आकर जीवंधरके सामने हाथ जोड़े दीखता है)

देव—(हाथ जोड़कर) हे महाभाग! मैं आपही की कृपा-से इस दशाको प्राप्त हुआ हूं। और......

जीवन्धर—(आश्चर्यसे उसकी ओर देख) तुम कौन हो?

देव—आपका सेवक, आपके इन पूज्य चरणों का दास।

जीवन्धर—अपना हाल साफ २ कहो क्या बात है?

देव—हे पूज्य ! मैं उस कुत्तेका जीव हूं जिसको कि आपने अभी नमस्कारमन्त्र और सदुपदेश देकर सम्यक मरण कराया था। मैं आपकी कृपासे स्वर्गमें बड़ी भारी विभूतिका स्वामी ऋद्धिधारी देव हुआ हूं। स्वामी ! इच्छा कीजिये जो कुछ चीज मैं आपकी सेवामें प्रदान करूं।

जीवंधर—मैंने तुम्हारे साथ ऐसा क्या उपकार किया है जो तुम इतनी प्रशंसा कर रहे हो, यह तो मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है कि एक दूसरे की रक्षा करे। वस्तुयाचना की कही मगर वर्तमानमें किसी चीजकी जरूरत नहीं दीखती है। हां ! आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें मैं स्मरण करूंगा।

देव—(हाथ जोड़) धन्य हैं प्रभो ! आपको धन्य है। आपकी उदारता और गम्भीरताकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। समय पड़ने पर इस दासको अवश्य याद कीजियेगा (देव जीवन्धरको प्रणाम कर और भेंटमें अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण वस्त्रादि दे चला जाता है। देवके चले जाने पर जीवंधर के सामने दो औरतें आ जाती हैं)

पहिली सखी—(प्रणाम कर) हे नरोत्तम ! हम दोनों आपके पास वस्तु-परीक्षा कराने आई हैं। हमारी स्वामिनी गुणमाला और सुरमंजरी इसका निर्णय होने पर ही स्नानादि करेंगी, इसलिये आप परीक्षा कीजिये कि हम दोनोंके चूर्णोंमें से किसका चूर्ण विशेष सुगन्धित है। (दोनों सखियां अपना अपना चूर्ण स्वामीको दे देती हैं और वे उनकी परीक्षा करते हैं)

जीवन्धर—(परीक्षा करके) यह गुणमालाका चूर्ण ही अति उत्तम है। इसकी महक अति श्रेष्ठ है।

दूसरी सखी—(जो सुरमञ्जरीकी थी, कुछ क्रोधित होकर) यह नहीं हो सकता। आप पुनः परीक्षा कीजिये और योग्य निर्णय कीजिये।

जीवंधर—इन चूर्णोंकी परीक्षा हो चुकी। क्या करूं, इस चूर्णकी सुगंधि दब चुकी। (और भी मित्रगण उसी चूर्णकी प्रशंसा करते हैं जिसको कि स्वामी ने अच्छा बताया था।

दूसरी सखी—

क्या सभी तुम एक हो जो एक स्वरमें बोलते।
करि परीक्षा ठीक लो अन्दाजसे क्यों बोलते॥
मालकिन मेरीका चूरण बुरा हो सकता नही।
पक्षपात करो न स्वामी, ऐसा हो सकता नही॥

यह आपने कैसे सिद्ध कर लिया कि वही चूर्ण उत्तम है।

जीवन्धर—(गम्भीरतामें)

गर्म क्यों होवो जरा बैठो बताऊं भेद में।
फर्क दोनोंमें दिखाऊं और समझाऊं तुम्हें॥

(गुणमालाके चूर्णको स्वामी ज्यों ही ऊपरको फेंकते हैं त्योंही उस पर भ्रमर गुञ्जार करने लगते हैं। दूसरी सखीके चूर्ण पर एक भी भ्रमर नहीं आता। यह दृश्य देख लज्जित हो सुरमंजरीकी सखी चली जाती है और पीछेसे गुणमालाकी सखी भी चल देती है। इधर जीवन्धर भी अपनी मित्रमण्डली

सहित चल देते हैं, उधर दोनों सखियां यथार्थ बात अपनी २ स्वामिनियोंसे कह देती हैं)

सुरमंजरी—(उदास होकर) हे बहन गुणमाला ! तुम स्नानादि करो, मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार घर पर जाती हूं । मैं जलक्रीडा नहीं करूंगी । (कहकर जाती है मगर गुणमाला रोक लेती है जाने नहीं देती)

गुणमाला—नहीं बहन ! ऐसा न हो सकेगा । तुम बिना स्नानादि किये न जा सकोगी ।

सुरमंजरी—बहन ! अब मुझे रोकना अच्छा न होगा । इस समय मेरा जाना ही ठीक है ।

गुणमाला—बहन ! तुम्हें ऐसा न करना चाहिये ।

सुरमंजरी—ऐसा ही होगा बहन ! मैं जाऊंगी; रुक नहीं सकती ।

गुणमाला—तब मैं भी चलूंगी । देखो मान जाओ ।

सुरमंजरी—नहीं, (कहकर चल देती है चलते २ स्वगत) "यदि विवाह करूंगी तो जीवन्धरके साथ ही करूंगी, अन्यके साथ नहीं और न आजसे किसी अन्य पुरुषका मुंह ही देखूंगी" कहती २ सुरमंजरी चली जाती हैं और पीछेसे गुणमाला भी चल देती है । ब्राह्मण बैठे रहते हैं । परदेका आहिस्ते २ गिरना)

यवनिका पतन ।

अंक दूसरा—सीन तेरहवां।

जीवंधरके महलके सामनेकी सडक।

जीवंधर बैठे हैं, सामनेसे एक मदोन्मत्त हाथी जनताको मारता चला आ रहा है।

जनता—अरे वो मरा! वो मरा!! बचाओ! बचाओ!! यह दुष्ट हाथी एक को भी जीता न छोडेगा। हाय! गजब! गजब!! गुणमाला! भाग!! भाग!!! अरे इस लडकीको कोई बचाओ। हाय! मारी गई, अब यह न बच सकेगी। (उसी समय जीवन्धरका जल्दीसे आना और एक मुक्का मार कर ही हाथीको निर्मद कर देना। स्वामीके हाथका मुक्का लगते ही उसका चुपचाप एक तरफ विनीत भावसे खडा रहना। चारो तरफसे जय हो! इत्यादि आवाजोंका आना। गुणमालाकी जीवन्धर पर निगाह पडना।)

गुणमाला—(कृतज्ञतापूर्वक) स्वामी! स्वामी!! आपने ही मेरी रक्षा की है। आगे बोलना चाहती है मगर बोल नहीं सकती)

जीवन्धर—(प्रेमपूर्वक) जाओ, अब कोई प्रकारका भय नहीं है। आगे रास्ता निरापद है।

गुणमाला—(सामने नजर कर प्रेमसे) हे स्वामिन्! क्या मैं आपका कुछ भी उपकार कर सकूंगी? क्या मेरी......(कह कर लज्जावश मुख नीचा कर लेती है, आगे बोला नहीं जाता)

जीवन्धर—क्यों नहीं! सभी जीव मौका प्राप्त होने पर एक दूसरेका उपकार करते हैं। संभव है कि ऐसा हो सके। तुम इसकी चिन्ता क्यों करती हो?

गुणमाला—नाथ! [निगाह ऊपरको उठाती है मगर उठती नहीं]

जीवन्धर—गुणमाला! गुणमाला!! क्यों? बोलना क्यों बन्द कर दिया? क्या अब भी कुछ भय मालूम देता है? [गुणमाला देखना एवं बात करना चाहती है मगर उसे उसकी लज्जा ऐसा नहीं करने देती। न नजर ही उठती है और न मुंहसे बात ही निकलती है। आखिरकार वह जीवन्धरको अपने हृदयमें रख चलदेती है। जीवन्धर भी सामनेवाले अपने कमरेमें जाकर बैठ जाते हैं और चिंतामें डूब जाते हैं। उसी समय एक मनोहर शुक [तोता] उड़ता हुआ स्वामीके हाथ पर बैठ बड़ा प्रेम प्रगट करता है। स्वामी भी उसपर बड़े प्रेमसे अपना हाथ फेरते हैं। शुकके गलेमें बंधी हुई चिट्ठी पढते हैं। बस पत्रके पढ़ते ही स्वामीका चहरा खुशीसे खिल उठता है)

जीवन्धर—(स्वगत) अहा! क्या सुन्दर भावोंसे पत्र लिखा गया है। कैसी मोहक शक्ति इन शब्दोंमें भरी हुई है। जैसे चुम्बक, लोहेको अपनी ओर खींचता है वैसे ही यह प्रेम पत्र मेरे चित्तको खींच रहा है। अहा! गुणमाला तू वास्तवमें गुणों की माला ही है, नहीं तो तेरेमें इतने गुण कहांसे पाये जाते! पत्रको बार २ बांचता है और खुश होता है, बादमें उसका उत्तर

लिख उसी शुकके गलेमें बांध देता है। शुक पत्र लेकर उड़ जाता है और जीवंधर उसकी तरफ देखते रह जाते हैं। यहां पर शुक जो बनावटी है उसे रस्सीसे उतार और खींच लेना चाहिये)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा सीन—चौदवाँ।

गुणमालाका महल।

गुणमाला अपने सहेलियोंके साथ बैठी है। सामने शुक बैठा हुआ है।

सखी—(मुशिकाकर) कहो बहन गुणमाला! शुक क्या खबर लाया है? जरा बताओ तो सही, तुमने तो बात ही छिपाली। क्या समुद्रमें रहकर मगर मच्छोंसे वैर निभ सकता है?

गुणमाला—खबर तो अच्छी लाया है मगर इसमे सुखकी जगह अभी दुख ही पाया है। कुछ सुख तो नहीं दीख रहा है।

सखी—क्यों?

गुणमाला—क्या तू मेरी शरीराकृतिसे नहीं जान सकती

सखी—हां बहन! जानती हूं मगर यह जुदाईका दुःख बहुत थोड़े समयका है, इसकी ज्यादा अवधि नहीं है।

गुणमाला—क्या मालूम? मैं कुछ भी नहीं कह सकती।

सखी—क्या यह तुम्हारा अलौकिक प्रेम छिपा है ? नहीं बहन ! वह चेतारके समान शीघ्रही फैल गया है, सभीको मालूम हो गया है।

गुणमाला—हैं, क्या कहती है ?

सखी—बहन ! मैं सच कहती हूं, तुम्हारे प्रेमकी बात तुम्हारे माता पिताको मालूम हो गई है। क्या सुगंधि भी छिपाये छिप सकती है ?

गुणमाला—इसकी खबर ! मेरे मा बापको मालूम हो गई ! तू क्या कह रही है ? तो मेरे मा बाप मुझे निर्लज्ज समझते होंगे। मेरी तरफसे उनको घृणा हो गई होगी। हाय ! अब मैं क्या करूं ? (चिंतित होती है)

सखी—क्या करो ? मौज करो, अपने प्यारेसे प्रेम करो और मनमें इस चिंताको दूर करो।

गुणमाला—बहन तू इस समय करना ये मजाकें छोड़ दे।
जो मेरा हैरान है ये चुलहबाजी छोड़ दे॥
कुछ मुझे सूझे नहीं नहि कहिसकूं तनकी व्यथा।
सालती सारे वदनमें क्या कहूं उसकी कथा॥

सखी—मन मेरा हैवान है इस समय सच कहती बहन।
बात जबसे है सुनी तबसे खुशी हूं मैं बहन॥
चुहलबाजीका समय भी है यही मेरी बहन।
है दवा तय्यार वह व्याधी हरै तेरी बहन॥

गुणमाला—देखो ! अधिक मत बढ़ो, इस समय दिल्लगी करना ठीक नहीं है।

सखी—ना कब ?

गुणमाला—मैं नहीं कह सकती कि कब।

सखी—तो मैं तो कह सकती हूं कि अब। बहन! वह दिन आज ही है कि तुम अपने प्यारेका हाथ पकड़ोगी। क्या मैं झूठ बोलता हूं! अच्छा बताइये कि इसमें आपकी आत्मा क्या गवाही देती है ?

गुणमाला—(बनावटी क्रोध कर) देख! फिर वही बात! नहीं मानेगी ?

सखी—(हँसकर) हां, यही बात! आज तुम्हारे सौहरकी आवेगी बरात!

गुणमाला—(डपट कर) न मानेगी! बताऊँ क्या ?

सखी—नहीं, आज हम नाचेंगी, कूदेंगी और गाना गावेंगी।

गुणमाला—क्या पागल हो गई है ?

सखी—हां, हो ही गई है। या यों कहिये कि आज अपनी प्यारीके प्यारेके मिलनेकी खुशीमें मस्त हो गई है।

गुणमाला—(मारती हुई) फिर कहेगी! फिर कहेगी!!

सखी—(रोती हुई) अच्छा लो मैं सब बातें जाकर तुम्हारी मासे कहे देती हूं (सखीका भाग जाना और गुणमालाका वहीं पर चिंतित दशामें खड़ा रहना। भीतरसे सखीके साथ साथ गुणमालाकी माका आना)

सेठानी गुणमालाकी मा—(गुणमालासे) बेटी! आज यहां पर ऐसी अनमनीसी क्यों खड़ी है ? चल स्नान कर और कुछ खा पी ले।

सखी—(मुशिका कर) मा ! आज ये नाराज हो गई हैं। देखो, कैसी सुस्त होकर खड़ी है। किसीसे बात तक भी नहीं करतीं। आप इनकी चिंताको जल्दी मिटा दीजिये।

सेठानी गुणमालाकी मा—नहीं, नाराज क्यों होगी ? चल बेटी चल। (कहकर उसकी मा गुणमालाको भीतर लिवा जाती है। इधर सब तयारियां विवाहकी होने लगती हैं। उधरसे जीवंधर अपनी मित्रमण्डली सहित आ जाते हैं। गुणमालाके माता पिता अपनी लड़कीका जीवन्धरके साथ विधिपूर्वक विवाह कर देते हैं)

परियोंका आना और गाना।

हे वरना जी तुम पर हम दिल वारियां, मन हारियां ॥ टेक ॥
हर्ष मनाउँ मैं, तुम गुण गाउँ मैं, हिय हरषाउँ मैं। दिल० ॥१॥
प्रेम जतावना, मोद बढ़ावना, दर्श दिखावना। दिल० ॥२॥
समय सुहावना, है दिन पावना, नजर लगावना। दिल० ॥३॥
नेह लगाउँगी, प्रीति जनाउँगी, तुव गुणगाउँगी। दिलवारियां, मन हारियां, हे वरना जी तुम पर हम दिल वारियां मन हारियां ॥४

(गाते गाते परियोंका चला जाना)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा—सीन पंद्रहवाँ।

जीवंधरका महल।

भीतर जीवंधरका बैठा दीखना और बाहिर सैनिकोंका कोलाहल करते नजर आना।

द्वारपाल—(हाथ जोड़) हे स्वामिन्! आपको पकड़नेके लिये दुष्ट काष्ठांगारने सेना भेजी है। दरवाजे पर कोलाहल करती हुई अन्दर आ रही है।

जीवन्धर—(क्रोध दबा कर)

क्या करूं गुरुवाक्य मेरेको अभी है रोकते।
नही तो क्षण एकमें सारे जमी पर लोटते॥
दुष्ट काष्ठांगारका सिर काटकर लाऊँ अभी।
उस नराधम कीटको भेजूं जहन्नुममें अभी॥

जो, हो मगर प्रतिज्ञा नहीं तोड़ूंगा। गुरुके आगे किये हुये व्रतको भंग न करूंगा। (बाहिर आकर सैनिकोंसे) तुम सब ये क्या कोलाहल कर रहे हो? व्यर्थमें क्यो उछल रहे हो? तुम लोग यहां किसलिये आये हो?

सेनापति—आपको पकड़नेके लिये।

जीवंधर—इतने जने!

सेनापति—तब क्या पकड़ दो। राज्यका दवाब ही ऐसा होता है।

जीवन्धर—अच्छा चलो, मै खुशीसे चलनेको तयार हूं।
(चलता है)

सेनापति—ऐसे नहीं।

जीवंधर—(खड़ा हो कर) तो कैसे?

सेनापति—बँधकर, राजाकी यही आज्ञा है कि अपराधीको बांधकर लाया जाय।

जीवंधर—मैंने क्या अपराध किया है?

सेनापति—यह बात तो हमारे मालिक जानें, हमें मालूम नहीं। हम तो सिर्फ आज्ञाप्रमाण काम कर रहे हैं।

जीवंधर—क्या तुम लोगोंको डर लगता है?

सेनापति—डर हमें किस बातका ये हाथमें शमशेर है।
है भुजा बलवान, ये करती सबोंका ढेर है॥

(कुछ लोग ताल ठोकते हैं, कोई भुजाये दिखाते हैं और कोई तलवार हिला रहे हैं)

जीवंधर—(गुस्सा दबाकर—स्वगत)
गीदडो लो भोंक वचनोंसे बँधा ये शेर है।
कह नहीं सकता न कर सकता समयका फेर है॥

अच्छा; जिसप्रकार तुम्हारी इच्छा हो ले चलो, मैं तयार हूं।
उसी समय सेनापति जीवंधरको बांध कर ले चलता है।
सारी सैन्य उछलती कूदती हुई चली जाती है)

यवनिका पतन।

अंक दूसरा सीन सोलवाँ।

राज-दरबार।

काष्ठांगारका मय मंत्री आदिके बैठा दिखाई देना।

काष्ठांगार—क्या बात है? अभी तक उस छोकरेको पकड़कर सेनापति नहीं लाया। बुद्धिमानोंको अपना दुशमन रखना ठीक नहीं है। उसके रहनेसे भारी नुकशान हो सकता है। (स्वगत) मुझे भय है कि यह कहीं बढ़ जानेपर इस राज्यको ही न ले लेवे। इससे इसका अभी मार डालना ठीक होगा। (सेनापतिका बँधे हुये जीवंधरको लाते हुये प्रवेश)

सेनापति—(हाथ जोड़) लीजिये महाराज! यह दुष्ट छोकरा आपके सामने उपस्थित है। जो आज्ञा हो वैसा किया जाय।

काष्ठांगार—(क्रोधपूर्वक) इसको देखते ही मेरी आंखोंमेंसे खून बरसता है। इसे अभी फांसी चढ़ा दो या शिर धड़से अलग कर दो। यह दुष्ट मेरे हृदयमें वाण सरीखा चुभ रहा है। इसके दोषोंको याद करनेसे मुझे भारी क्रोध उत्पन्न होता है। अतः अभी जल्लादोंको बुलाओ और इसे मेरे आंखोंके सामने ही फांसी पर चढ़ाओ, मेरी शांतिका उपाय इसका संसारसे उठना ही मात्र है। (दो जल्लादोंका हाथमें नंगी तलवारें लिये हुये प्रवेश। जल्लादोंको सामने देख कर) अये जल्लादो! क्या देखते हो, अभी मेरे सामने इस दुष्ट बँधे हुये छोकरेका शिर

अलग कर दो। देरी करनेका काम नहीं है। (जल्लाद लोग भयंकर रूप धारण कर मारनेको ज्योंही तलवार उठाते हैं त्यों ही एक देव स्वामीको ऊपरका ऊपरही उठा ले जाता है। सबके सब भय चकित हुये देखतेही रह जाते हैं।

[नोट] यहां पर पर्देके ऊपर रस्सी कुछ लटकती रहे उसे जीवंधर पकड़ ले और फिर जल्दीसे ऊपरको खींच लिया जाय, पर्देका जल्दीसे गिरना)

[यवनिका पतन] ड्राप।

द्वितीयांक समाप्त।

तृतीयांक।

अंक तीसरा—सीन पहिला

जंगल-पहाड़ी

जंगलके मध्य मनोहर चन्द्रोदय पर्वतपर जीवंधर स्वामीका सिंहासनपर बैठे हुये देव द्वारा स्तुति करते दिखाई देना।

देव—(हाथ जोड़कर) हे पूज्य ! यह दास आपकी सेवा करनेको तयार है। मेरे योग्य आज्ञा दीजिये और मुझे अपना सेवक समझिये।

जीवंधर—भाई ! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया, जिसका…

देव—उपकार ! स्वामी, आपका उपकार !! हे प्रभो ! आप जगत्‌का उपकार करते हैं, भला आपका भी कोई उपकार कर सकता है । स्वामी ! मेरी कुछ तुच्छ भेंटको स्वीकार कीजिये ।

जीवंधर—मुझे वर्तमानमें किसी भी चीजकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

देव—क्या मेरी ये प्रार्थना विफल जायगी ? हे महाभाग ! मैं आपको तीन विद्यायें प्रदान करना चाहता हूं, जिससे आपका आगे बहुत काम निकलेगा ।

जीवंधर—तुम्हारी इच्छा, मुझे मंजूर करना ही होगा ।

(स्वामीको देव इच्छित रूप बनानेकी, विष दूर करनेकी और तीसरी गानमे सबको जीतनेकी ये तीन विद्यायें देकर तथा भूरि भूरि नमस्कार कर चला जाता है । पीछे स्वामी भी धीरे २ उस अलौकिक जंगलकी शोभा को देखते २ आगे चल देते हैं । कुछ ही दूर पर जंगलमें अग्नि लग जानेसे सारे जीव त्राह २ कर रहे हैं । यह दृश्य देख स्वामी विघ्नोपशमनके लिये निम्न स्तोत्र पढ़ते हैं—

तारो जी तारो नाथ तुम हो प्रतिपालक स्वामी ॥ टेक ॥
तुम हो प्रभु अंतरयामी, काटो दुख हे जगनामी,
संकटमोचन गुणग्रामी, कीजें रक्षा शिवगामी ॥
पावें है दुःख दूर करदो शिवसुखविश्रामी ॥ तारो जी १॥
जीवन पर करुणा धारो, इस दुखसे आप उवारो,
अग्नीकी बाड़ निवारो, आया है संकट भारो,

आपही समर्थ और दूजा नहिं अन्तरयामी ॥ तारोजी ॥२॥
दुखमें जिन आप चितारा, तुम उन भव सिन्धु उतारा,
जगमें तुव यश विस्तारा, काटो दुख स्वामी भारा,
दुखसे बिललांय जीव रक्षा करि तारो स्वामी तारा जी ३

(स्तोत्र खतम होते ही जलवृष्टि होती है जिससे सभी अग्नि बुझ जाती है उसी समय वही देव सामने आजाता है)

देव—हे पूज्य ! चलिये आपका नियोग सध गया यदि आप यहां न आते तो यह अग्नि शमन न होती और न मालूम कितने जीवोंका विध्वंस कर देती। (स्वामी देवके साथ २ चल देते हैं) [यवनिका पतन]

——:o:——

अंक तीसरा—सीन दूसरा

राजमहल

राजकन्या सर्पविषसे मूर्च्छित हुई पडी है। सभी राजादिक उदासीन बैठे हुये हैं।

(जीवंधरका प्रवेश)

जीवंधर—यह क्या मामला है ! आप लोग सभी क्यों परेशानसे दीखते हो ! कहिये इस उदासीनताका क्या कारण हैं ?

राजा—(उठकर)

भाग्यशालिन ! तुम सुनो पुत्री मेरी विषधर डसी।
बहुत कीने यत्न लेकिन व्यथा इसकी नहि हटी ॥

है नहीं मालूम ये किस जातिके अहिने डसी।
निकलती है जान इसकी हाय ! ये दुख में फंसी॥

आपके देखनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। क्या आप कोई ऐसा उपाय बतावेंगे जिससे ये मेरी पुत्री जीवित होसके।

जीवंधर—(परीक्षाकर)

हे नरोत्तम आप इसका सोच तनक न कीजिये।
आपकी पुत्री बचेगी फिक्र अब मत कीजिये॥
मैं इसे निर्विष करूं मेरा वचन सुन लीजिये।
आप अपने पुण्यसे जिन्दी इसे अवलोकिये॥

राजा—तो हे महोत्तम ! वह शीघ्र उपाय कीजिये जिससे मैं इसे जीवित देख सकूं।

जीवन्धर—प्रथम आप इन सभी पुरुषोंको एक तरफ बैठने की आज्ञा दीजिये। (सब एक तरफ बैठ जाते हैं। कन्याके पासमें जाकर ज्योंही जीवंधर उसके वदनपर अपना हाथ फेरते हैं त्योंही वह उठ बैठती है। अपने सामने एक दिव्य पुरुषको बैठा देख उसकी तरफ देखती और स्वामी भी उसकी तरफ देखते हैं। दोनोंकी चार आंखे होते ही एक दूसरेपर मुग्ध होजाते हैं। राजकन्या लज्जित होकर नीचा मुख कर लेती है)

राजा—(बड़े प्रेमसे)

हे सुभग वर ! आपने उपकार मेरा जो किया।
कहि सकूं बचसे नही तुमने मेरा मन वश किया॥
आपके उपकारका उपकार मैं कैसे करूं।

है इरादा ये मेरा पुत्री तुम्हें अर्पण करूं ॥
दिया जीवन है तुम्हींने अब तुम्हीं रक्षक बनो।
तुम मेरे इस रत्नके हे भाग्यवर ! पोषक बनो ॥
है तुम्हारे योग्यहो ये अब इसे अपनाइये ॥
राज्यका भागर्द्ध भी ले प्रेमको दरशाइये ॥

जीवंधर—आपकी आज्ञा मुझे मंजूर है मंजूर है।
गुरुजनोंके वाक्य मुझको मानना मंजूर है ॥

(स्वामीकी स्वीकारताके बादही बड़े ठाठबाटके साथ राजा अपनी प्रियपुत्री पद्माका जीवंधरके साथ २ विधिपूर्वक विवाह कर देता है। (परियां मंगल गान करने आती हैं)

गाना परियोंका।

हे चित्तचोर ! तुमने सबका मन हरिलीना यहां आय ॥ टेक ॥
बहकि गईं लखि रूपका, गईं सनाका खाय।
निरखत चितवनमें हमें, लूट लई तुम आय ॥
हे रसराज तुमने अद्भुत रस बरसाया सुखदाय ॥ हे चित ॥१॥
खानपान भूलो सभी, बुद्धि गई बौराय।
तुमरी सूरतने हमें, पागल दीन बनाय ॥
हे दिलदार ! तुमने जादू करके मोह्या दिल आय ॥ हे चितचोर २
यही कामना हम करें, दीजे दरशन सार।
जुग २ जीवो कुमरजी, ये आशीश हमार ॥
हे सुकुमार ! हमको मत बिसराना सुनलो चितलाय ॥ हे चितचोर

(परियोंका गाते २ चला जाना)

जीवंधर—(राजासे) हे पूज्य ! मुझे जानेकी इजाजत दीजिये ।

राजा—हे महाभाग ! कुछ दिन रहिये और हमें अपने पवित्र दर्शनोंसे वंचित न कीजिये ।

जीवंधर—हे महाभद्र ! अभी मुझे छुट्टी दीजिये, मैं शीघ्र ही आकर आपके दर्शन करूंगा । यद्यपि आपके पाससे मेरा भी जी जाने को नहीं चाहता मगर क्या करूं भवितव्य इसी अनुसार है । आप चिन्ता न करें, मै बहुत शीघ्र आकर मिलूंगा ।

राजा—(उदास होकर) क्या आप न मानेंगे ? हमलोगों को छोड चले जावेंगे ।

जीवंधर—अभी तो जाता हूं किन्तु लौट कर बहुत जल्दी आऊंगा (कहकर जीवंधरका चला जाना) यवनिका पतन ।

अंक तीसरा—सीन तीसरा ।

तापसाश्रम

बहुतसे तपस्वी तप तप रहे हैं । कोई पचाग्नि तप तप रहा है कोई ऊपरको हाथ किये खडा है और कोई पगसे खड़ा हुआ है ।

(जीवंधरका प्रवेश)

जीवंधर—हे चतुर पुरुषो ! "मा हिंस्यात्सर्व भूतानि" अर्थात् किसी भी जीवकी हिंसा मत करो, उनको न सताओ । यह वेद-

वाक्य होनेपर भी फिर क्यों आप लोग इस हिंसात्मक तपको तपते हो ? ऐसा करनेसे क्या वेदवाक्योंका उल्लंघन नहीं होता ? क्या जीवोंपर दया न करनेसे धर्म हो सकता है ?

दोहा—जहां दया तहां धर्म है । अदया तहां अधर्म ।
दया भाव पालै सुधी । तभी लहै शिवशर्म ॥

एक साधु - आप क्या कहते हैं ?, क्या हमलोग अधर्मी हैं जो दूसरोंको सतावेंगे ? हमलोग शरीरके शापणार्थ और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये ही यह तपस्या करते हैं ।

जीवन्धर—क्या आरंभ, परिग्रह रखते और हिंस्य व्यवहार करते हुये भी मोक्षप्राप्ति होती है ! क्या आपके वेदवाक्य ऐसे हैं ?

साधु—हमलोग ऐसा व्यवहार नहीं करते जिससे जीवोंको बाधा हो । यदि आपने हमारा कोई ऐसा व्यवहार देखा हो तो बताइये । आप हमारे कौनसे व्यवहारसे पाप मय क्रियायें देख रहे हैं ।

जीवंधर—(गाना गाते हुये)

तुम हिंसाको सेवो पापी बनो निज धर्म गमावो हो जानके हां, टेक
इन जटा मांहि बहु जीव हैं भरे लखो न सदीव ।
खोल देखो क्यों झूठे तपस्वी बनो ॥ निज ॥ १ ॥
(जटाएँ खोलकर देखते हैं । उनमेंसे बहुतसे जूं निकलते हैं)
इन लक्कड मांहि निहारो है भरे जीव क्यों जारो ।
मारि जीवोंको फिर भी तपस्वी बनो ॥ निज ॥२॥

(लकड़ियोंके दखनेमें भीतरसे चिउटी जट आदि बहुत जीवनिकलते हैं)

तप तपो सुतप ये छोड़ो, आरम्भ परिग्रह तोड़ो।
क्यों न कर्मोंको नाशि विशुद्ध वनो ॥ निज ॥ ३ ॥
नहिं खून खूनसे धुलता, हिंसासे सुख नहिं मिलता।
तुम त्यागी हो क्यों फेरि हिंसक वनो ॥ निज ॥४॥
परमात्मस्वरूप निहारो, निजको तद्रूप विचारो।
तुम ध्यानाग्निसे क्यों न कर्म होनो ॥ निज ॥५॥

साधु—क्या हम अभी तक अज्ञानी थे ?

जीवंधर—वेशक ।

साधु—आपका हम वहुत उपकार मानते हैं।

जीवंधर—मैं किस लायक हूं ।

साधु—आप सब लायक हैं। हमारे जीवनके सुधारक हैं। हम लोगोंको आपने सच्चा मार्ग दिखाया और हम भूले हुओंको रास्तेपर लगाया। क्या यह कम महत्वकी वात है ?

जीवंधर—यह सब भवितव्यतापर निर्भर है। जैसा होनहार होता है वैसा ही निमित्त मिल जाता है।

साधु—हे महाभाग । अब हमको अच्छी तरह परिज्ञान होगया कि हिंसात्मक कर्म कभी आत्माको सुखदायक नहीं हो सकता। वास्तवमे आरंभ और परिग्रहरहित अवस्था ही इस जीवको मोक्ष प्राप्त करानेमें कारण है। अब हमलोग आपके उपदेशसे मुक्तिको पाया हुआ ही समझ रहे हैं ।

जीवंधर—ऐसा ही हो। आपकी आत्मायें विशुद्ध हों। सभीको सत्य मार्गकी प्राप्ति हो। मनुष्य पर्यायकी श्रेष्ठता इसीमें है। अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये। (कहकर जीवंधरका चला जाना। साधुओंका उनकी तरफ देखते ही रहना)

यवनिका पतन।

अंक तीसरा—सीन चौथा।

शहरके पास चैत्यालय।

चैत्यालयके फाटक बंद हैं कुछ दूर पर एक द्वारपाल बैठा हुआ है।

(जीवंधरका प्रवेश)

जीवंधर—(चैत्यालयके फाटक बन्द देख) क्या कारण है कि मैं इस मनोहर चैत्यालयको बन्द देख रहा हूं? समय तो दर्शन-पूजनका ठीक है, मगर यहां तो कोई भी नजर नहीं आता। (फाटक खोलता है मगर खुलते नहीं हैं। तब खड़ा खड़ा निम्न स्तोत्र पढ़ता है)

जिनदेव तुझे मैं ध्याऊं। तुव चरणन शीस नवाऊं॥
मम अज्ञ तिमिरके काजे। तू ज्ञान सुदीप विराजे॥
भव दुख सब आज नसाऊं। तुम भक्ति भाव चित लाऊं॥
मैं हूं तुव चरणन चेरा। प्रभु मेटि मेरा भव फेरा॥
भव तारक तुमको पाऊं। फिर अन्य जगह क्यों जाऊं॥

दर्शन दो प्रभु सुखकारी। नाशो भव पीर हमारी॥
करि अरजी माथ नवाऊं। लखि दर्शन पाप नशाऊं॥
मैं दर्शनके हित आयो। लेकिन दर्शन नहिं पायो॥
मैं दीन क्यों नहि पाऊं। क्यों शांति छवी न लखाऊं॥

(स्तोत्र पूर्ण होते ही फाटक खुल जाते हैं। सामने मनोज्ञ चैत्य नजर आता है। जीवंधर भीतर चले जाते हैं और निम्न स्तोत्र पढ़ते हैं)

वीरनाथ! जिनेश तुमको वार वार प्रणाम है।
नाथ! तेरी भक्तिका ही यह सभी परिणाम है॥ टेक॥
आज मेरा जन्म अरु ये गात्र भी सार्थक हुआ।
मिला दर्शन आपका प्रभु! वार वार प्रणाम है॥
रंक इक निधिके मिलेसे अकथ जो आनँद लहै॥
वही सुख मुझको मिला प्रभु वार वार प्रणाम है॥
सर्व विघ्न भगे तुझे लखि आत्मनिधि परगट भई।
है जिनेश्वर! देव तुझको वार वार प्रणाम है॥

(जीवन्धर दर्शन करके ज्यों ही वाहिर आते हैं त्यों ही हाथ जोड़े सामने द्वारपालको देखते हैं)

द्वारपाल—(हाथ जोड़ कर) हे नाथ! आपका वडे पुण्यो-दयसे मुझको दर्शन हुआ है। मैं बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंकी आशा लगाये बैठा हुआ हूं।

जीवंधर—तुम कौन हो?

द्वारपाल—मैं आपका सेवक द्वारपाल हू और बहुत दिनोंसे यहां बैठा हुआ हूं।

जीवन्धर—सब हाल साफ साफ कहिये, जिससे यथार्थ घटना मालूम पड़े।

द्वारपाल—यह सामने इन्द्रपुरीके समान क्षेमपुरी नगरी है। यहांका राजा नरपति बड़ा नीतिवान और धर्मात्मा है। इसी नगरीमें सेठ सुभद्र रहते हैं उनके सर्वगुणसम्पन्ना अनेक शुभ लक्षणोंकी धारक क्षेमश्री नामकी कन्या है। ज्ञानी पुरुषोंने बताया था कि जो भाग्यशाली इस सहस्रकूट चैत्यालयके कपाट खोलेगा वही इस कन्याका स्वामी होगा। मैंने सेठको बुलानेके वास्ते आदमी भेजा है वह आते ही होंगे। (सुभद्र सेठका प्रवेश)।

सेठ सुभद्र—हे भाग्यशालिन्! आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हम लोग आपकी बाट बहुत दिनोंसे देख रहे थे। क्या आप मेरी अति सुहावनी बातको मंजूर करेंगे?

जीवन्धर—कहिये, यदि वह बात मेरे लायक होगी तो क्यों न मंजूर करूंगा।

सेठ सुभद्र—वह बात आपके ही लायक है। दूसरा कौन ऐसा भाग्यशाली है जो उसका पात्र हो। आप मेरी परम सुंदर अनेक गुणालंकृत क्षेमश्री कन्याको स्वीकार कीजिये। ज्योतिषियोंके बताये अनुसार आपही उसके पति हो सकते हैं।

जीवन्धर—आपकी आज्ञा मुझे मंजूर है।

(सुभद्र सेठ जीवन्धरकी मंजूरी पातेही बड़ी विभूतिके साथ अपनी क्षेमश्री कन्याका जीवन्धरके साथ विधिपूर्वक विवाह कर देता है। परियां मुबारकबादी गानेको आती हैं)

गाना परियोंका।

आवो जी आवो तुम रसराजके बरसानेवाली ॥ टेक ॥
सुन्दर यह समय पाया, आनँद रस घोर प्याया।
सुन्दर वर हाथ आया, आज शुभ रत्न पाया ॥
नाचो जी नाचो तुम गुण गावोरी गुण गानेवाली ॥ १ ॥
दूल्हा औ दुलहिन प्यारी, जोड़ी जुग जीवो भारी।
पावें सुख सम्पति सारी, होवें राजेश्वर भारी ॥
आया है समय आज गावोरी हरषानेवाली ॥ २ ॥
कैसा वर सुन्दर सलोना, पाया घर बैठे सोना।
जिसकी अन उपमा है ना दूजा ऐसा न मिले ना ॥
कूदो जी कूदो गान गावोरी तुम गानेवाली ॥ ३ ॥

(गाते २ परियोंका चला जाना। बाद आज्ञा लेकर जीवन्धरका भी चल देना)

यवनिका पतन।

अंक तीसरा—सीन पांचवाँ।

जंगल।

जीवंधरका बैठा दिखाई देना। (सामनेसे एक पथिकका प्रवेश)

जीवन्धर—(पथिकसे) हे आर्य! कहां जाते हो?

पथिक—हे महाभाग! मैं कृषीविषयिक कुछ सामान लेनेके लिये सामने उस गांवको जा रहा हूं।

जीवन्धर—हे भद्र! कृषीके व्यापारमें तो हिंसा बहुत होती

है, यह हिंसात्मक व्यापार भद्र पुरुषोंके लिये करना ठीक नहीं है।

पथिक—हे पुरुषोत्तम! यह व्यापार मैं बहुत दिनोंसे करता आ रहा हूं। मैं जानता हूं कि इसमें पाप अधिक है मगर यह व्यापार छूटना नहीं है।

जीवन्धर—ऐसा जानकर भी ऐसा पापिष्ठ व्यापार क्यों करते हो?

पथिक - अभी इसकी अवधि पूरी नहीं हुई है।

जीवन्धर—तो कब होगी?

पथिक—निमित्त मिलने पर?

जीवन्धर—कैसा निमित्त मिलनेपर?

पथिक—आप जैसा।

जीवन्धर—तो मैं तो मौजूद हूं। कहिये आप मुझसे क्या चाहते हैं?

पथिक—तब मैं भी इस पापिष्ठ व्यापारको त्याग करनेके लिये तयार हूं।

जीवन्धर—आपको सांसारिक दशा मालूम है?

पथिक—कुछ कुछ।

जीवन्धर—और क्या आत्मस्वरूपका अनुभव है?

पथिक—था, मगर बीचमें विस्मरण हो गया था। अब पुनः जागृत हो रहा है।

जीवन्धर—आत्मज्ञान किससे होता है?

पथिक—आत्मस्वरूपके विचार करनेसे। सम्यग्ज्ञान पैदा होनेसे।

जीवन्धर—आत्मा शुद्ध कैसे हो सकता है?

पथिक—व्रत, शील और तपादिकके धारण करनेसे।

जीवन्धर—व्रत शीलादिकोंको कौन धारण करता है?

पथिक—भव्यात्मा।

जीवन्धर—क्या तुमको व्रत, शील, नियमादिकी विधि मालूम है?

पथिक—अभी तक तो मालूम नहीं थी, मगर अब आपकी कृपासे याद आई है।

जीवन्धर—श्रावकके व्रत कितने होते हैं?

पथिक—बारह और तेरहवा समाधिमरण।

जीवन्धर—आप इनको पालते थे?

पथिक—नहीं, मगर अब आपकी कृपासे पालूँगा।

जीवन्धर—दिलसे?

पथिक—मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे।

जीवन्धर—आपको धन्य है।

पथिक—मुझको कि आपको। हे प्रभो! मैं आपका बड़ा उपकार मानता हूं।

जीवंधर—मुझे बड़ा आनन्द है कि आप मुझ तुच्छ बुद्धिधारीके मामूली उपदेशसे सुधर गये और सच्चे रास्ते पर आ गये।

पथिक—कुछ सुधर गया ! या यों कहिये कि मैं इस दुःख-रूप। संसारसमुद्रसे पार हो गया। अब आज्ञा होय तो जाऊं, मैं आपके कहे अनुसार सर्व व्रतोंको निरतीचार पालन करूंगा।

जीवन्धर—ऐसा ही हो। अच्छा ! अब जा सकते हैं।

(पथिकका चला जाना और थोड़ी ही दूर पर एक मनोहर गानेकी आवाज सुनना।)

गाना मदनवेगा विद्याधरीका।

इस विकट वनके मांहीं ये हूरनूर क्या है ? ॥ टेक ॥
दामिन सा है दमकता, रत्नोंसा है चमकता।
इसके विना जहांमें मेरा जु और क्या है ॥ इस ॥ १ ॥
इससा जहानभरमें, देखा न सुभग नर मैं।
इस कामदेवके विन जीना मेरा वृथा है ॥ इस ॥
इसको वनाऊँ प्यारा, दिलमें यही विचारा ॥
चलके रिझाऊं इसको अव सोच करना क्या है ॥ ३ ॥

(गाते २ जीवन्धरके सामने अति विनम्र होकर) हे पुरुषोत्तम ! आज मैं इस जङ्गलमें दो दिनसे बड़ा कष्ट सह रही हूं। क्या आप मुझे कुछ मदद देकर रक्षा न करेंगे ?

जीवन्धर—(ऊपरको नजर उठाकर) तुम कौन हो ? इस जङ्गलमें इस प्रकार अकेली घूमनेका क्या कारण है ? क्या तुम्हारा कोई हितैषी नहीं है ? सब बातें साफ २ कहो।

मदनवेगा—हे प्रभो ! आप मेरी रक्षा करो। मुझ दुखिया का दुख हरो। मेरा चित्त परेशान है। कहना चाहती हूं मगर कहते नहीं वनता कि कैसे कहूं।

जीवन्धर—हे सुमते ! तुझे क्या दुःख है ? तू मुझसे क्या चाहती है ? तू हिचकियां क्यों ले रही है ? साफ साफ बयान क्यों नहीं करती ?

मदनवेगा—(मोहित होकर) नाथ ! मेरे दुःखरूपी संताप के मेटनेके लिये आपही समर्थ हो। हे प्राणाधार ! मुझे सहायता देकर इस महान दुखसे मुक्त करो (हाव भाव दिखाती है)

जीवन्धर—(व्यभिचारिणी जानकर) हे सुबुद्धे ! तू क्या कह रही है ? मेरी समझमें कुछ भी नहीं आता।

मदनवेगा—प्यारे मोहन ! आपकी क्या समझमें आता नहीं।
ये विषय भी आपकी क्या समझमें आता नहीं ॥
क्या मुझे अब साफ कहना पड़ेगा प्यारे मेरे।
क्यों कहावो साफ मुझसे समझ लो प्यारे मेरे ॥

क्या मेरी इस हालतसे आप मेरी वेदनाको नहीं जान रहे हो ? सच कहती हूं प्यारे ! मैं तुम्हारे बिना मर रही हूं। (विशेष कटाक्षादि करती है)

जीवन्धर—(गम्भीरतासे)
हे सुबुद्धे ! परत्रियासे बात जब करता न मैं।
तब तेरा ये ढोंग रचनेसे न समझूं लाभ मैं ॥

मदनवेगा—नाथ ! मैं अविवाहिता हूं सुन्दरी विद्याधरी।
सत्य मानों मैं उठाऊं दुःख इस बनमें परी ॥

जीवन्धर—(जरा जोरसे) तुम कन्या नहीं हो। अवश्य तुम्हारा विवाह हो चुका है। तुम बिलकुल झूठ बोलती हो।

मदनवेगा-नहीं नाथ ! झूठ नहीं बोलती। मुझे मेरे भाईके सालेने अपनी स्त्रीके भयसे यहां पटक दिया है। सो जीवनाधार! मुझ कन्याको आप स्वीकार करो। अब मुझसे नहीं रहा जाता। (मदनवेगा अपने अङ्गोंको इस प्रकार दिखाती है जिसको देखकर चित्त विचलित हो जाय)

जीवन्धर—नहीं, ये सब बातें बनावटी हैं। देख! तू ऐसे निंद्य पाप कर्ममें क्यों प्रवृत्त हुई है ? क्यों अपने कर्तव्यसे च्युत होती है ? यह अमूल्य जीवन व्यर्थमें क्यों खाती है ? मैं ऐसी बातें सुनना नहीं चाहता। तुम यहासे चली जाओ, ज्यादे बात न बनाओ।

मदनवेगा—(कुछ आगे बढ़कर) हे चित्तचोर! अब ज्यादे न तरसाओ। मुझे अंगीकार करो। अधिक सताना क्या ठीक है ? देखो तो मेरी ओर ! मेरी इस समय क्या दशा हो रही है, इस पर जरा भी तो तरस करो। (एकदम मदनग्रस्त होकर शरीरको बार २ उघाड़ती और कटाक्षरूपी बाण फेंकती है)

जीवन्धर-(डपट कर)

दूर हट बातें बना मत तू कुटिल व्यभिचारिणी।
बहुत समझाया न मानी सीख शुभ हितकारिणी॥
मान जा अब भी सँभलजा अभी कुछ बिगडा नहीं।
क्यों गमावे धर्म तू ये बात हो सकती नहीं॥

मदनवेगा—(मदनग्रस्त होकर गाती है) गाना

हाय प्यारे! हाय प्यारे!! क्यों न अपनाओ मुझे ॥
हाय! मैं तुझपर मरूं पर तरस नहिं आता तुझे ॥ टेक ॥
प्राणप्यारे! प्राणप्यारे!! प्राणप्यारे!!! प्राण ये।
निकलते हैं प्राण मेरे है न जीना अब मुझे ॥ हाय ॥ १ ॥
प्रेमका कुछ मज़ा लूटो बात अब भी मान लो।
इन्द्रसम आनंद लूटो दुःख क्यों देते मुझे ॥ हाय ॥ २ ॥
सुनो मैं विद्याधरी हूं जोर विद्याका मुझे ॥
सारी दुनियामें फिरूं हाथों पे लेकरके तुझे ॥ हाय ॥ ३ ।

(गाना खतम होते ही कुछ आहट पाकर मदनवेगा भाग जाती है और हाथमें जलका लोटा लिये भवदत्त विद्याधर आ जाता है)

भवदत्त—(स्वामीको देख कर) हे महाभाग! मैं अपनी प्यारी स्त्रीको यहीं बैठा कर जल लेने गया था; मगर उसे यहां पर नहीं देखता हूं। क्या आपने उसे देखा है?

जीवन्धर—हे प्रिय भवदत्त! तू उसके पीछे क्यों पड़ा है?

भवदत्त—नाथ! वह मेरी स्त्री मुझे प्राणोंसे प्यारी है। वह पतिव्रता मेरे विना जिन्दी नहीं रह सकती।

जीवन्धर—तू विद्याधर हो कर भी इन स्त्रियोंके चुंगलमें फँसा है और नहीं जानता कि हजारों फरेबोंको धारण करनेवाली स्त्रियोंमें पातिव्रत और सदा एक सरीखा प्रेम क्या रह सकता है?

भवदत्त—स्वामी आप क्या कह रहे हैं? वह मुझे अति प्रिय है।

जीवन्धर—मगर उसका तुम अप्रिय हो।

भवदत्त—यह नहीं हो सकता!

जीवन्धर—नहीं क्या! हो सकता है और हो रहा है मगर तू मोहान्ध उसे नहीं देख रहा है।

भवदत्त—वह मेरी प्यारी हृदयेश्वरी है और मैं उसका प्यारा जीवनाधार हूं।

जीवन्धर—सब झूंठ, देख भवदत्त! ये स्त्रियां घमण्ड, क्रोध, कपट, डाह और मायाचारसे भरी हुई हैं। तुझे इनके फन्देमें नहीं फँसना चाहिये।

भवदत्त—(बातको अनसुनी कर विद्याका प्रयोग करता है मगर कार्यकारी नहीं होता देख—स्वगत) क्या बात है जो मेरी इस समय विद्यायें काम नहीं दे रही हैं। मैं उनसे अपनी प्रिया की बात पूछता हूं, लेकिन कुछ भी नहीं बतातीं (प्रगट) स्वामी! क्या बात है जो आज मेरी विद्यायें नहीं काम देतीं?

जीवन्धर—ठीक ही है। मूर्ख, मोहान्ध विषयलोलुपियोंके पासमें गुण नहीं ठहरते।

भवदत्त—(स्वामीकी बातको न सुन) हाय! मेरी प्रिया प्यासी होगी। न मालूम मुझे देरी होनेकी वजहसे कहीं वह खुद ही जल लेनेको न चली गई हो। अच्छा, मुझे पहिले उसे ही तलास करना चाहिये। (कुछ आगे बढ़कर) मैं रास्ता तो नहीं भूल गया। (जगह देखकर) नहीं यह स्थान तो वही है। इसी वृक्षतले तो मैं अपनी प्यारीको बिठा गया था।

(फिर विद्याका प्रयोग करता है मगर कुछ लाभ नहीं होता)
खैर ! विद्यायें काम नहीं देतीं हैं तो न सही, मगर मेरे ये पांव तो अवश्य काम देंगे। (कहकर इधर उधर फिरता हुआ गाना गाता है) गाना मवदत्तका

मेरी कहां है प्यारी दिलमें ये सोच भारी ॥ टेक ॥
ऊपरको उड़ गई क्या, धरतीमें धसगई क्या ॥
जल्दी भरो ये झारी, पीते न क्यों न प्यारी ॥ मेरी ॥ १ ॥
ऐ वृक्ष ! तू बतादे, कुछ तो पता लगादे ॥
प्यासी थी मेरी प्यारी, हरकतमें किसने डारी ॥ मेरी ॥ २ ॥
मैं छोड़ करके उसको, मरने गया क्यों जलको ॥
मेरी ही भूल सारी, आजा मेरी पियारी ॥ मेरी ॥ ३ ॥
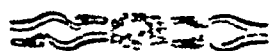
अंक तीसरा—सीन छटवाँ

राजमहल

राजा दृढरथका बाकायदे बैठा दिखाई पडना।

(राजपुत्रोंका जीवंधरको लिये हुये प्रवेश)

राजा दृढरथ—(स्वामीका दिव्यरूप देख, उठकर) हे पुत्र ! तुम्हारे साथमें ये महानुभाव कौन हैं ?

राजपुत्र—हे पूज्यवर ! इनका पधारना हमारे पुण्योदयसे ही हुआ है। आप धनुर्विद्याके अद्वितीय जानकार हैं। हम

आपकी तारीफ नहीं कर सकते। आप क्या इनके लक्षणोंसे नहीं जान रहे हैं कि ये कैसे पुरुष हैं ?

राजा दृढरथ—(बड़े प्रेमसे) हे प्रियवर। बैठो, हमारा आज बड़ा भाग्योदय है, जो आपका दर्शन कर रहे हैं।

जीवंधर—(नम्रतासे) हे पूज्य। मैं किस लायक हूं।

राजा दृढरथ—आप सब लायक हो। क्या आप मेरी एक प्रार्थनाको स्वीकार करेंगे ?

जीवंधर—क्यो नहीं ? यदि वह मेरे योग्य होगी तो अवश्य स्वीकार करूंगा।

राजा दृढरथ—हे विद्वद्वर। क्या मेरे इन पुत्रोंको आप धनुर्विद्या सिखा सकेंगे ?

जीवंधर—मुझे मंजूर है। मैं इनको थोड़े ही दिनोंमें इस विद्यामें पारंगत कर दूंगा। आप इसकेलिये कुछ चिन्ता न करें।

(यह सुनकर राजा दृढरथ बहुत प्रसन्न होता है और अपने पुत्रोंको वहीं छोड चला जाता है। इधर जीवंधर बाण विद्यामें बहुत जल्दी सभीको प्रवीण कर देते हैं। उसी समय कनकमाला राजा दृढरथकी पुत्री स्वामीको देखती है और वह उनपर पूर्णरूपसे आशक्त होजाती है किन्तु कनकमाला पर ज्योंही जीवंधरकी निगाह पड़ती है त्योंही वह भाग जाती है। इधर राजपुत्र जीवंधरको लेकर भीतर जाते हैं और उधरसे अपनी दो सखियोंको लेकर कनकमाला आजाती है। उसकी सखी सब भेद जान बतोर दिल्लगीके इस प्रकार व्यंगरूपसे पूछती है)

सखी—क्यों बहन कनकमाला ! क्या नहीं बतावोगी ? अभी किसकी तरफ निगाह लग रही थी। क्या अपनी प्रिय सखीसे भी इतना छिपाव ?

कनक—तू क्या कह रही है ? यह मेरी समझमें ही नहीं आता। आज तूने नशा तो नहीं कर लिया है जो ऐसी बहकी हुई सी बातें कर रही है।

सखी—हां, नसा तो कर ही लिया है, जभी तो आज रंग दूसरा नजर आ रहा है। अच्छा है। मगर मुझसे इतना छिपाव क्यो ? क्या बहन ! दिलकी बात न बतावोगी ?

कनक—अब मुझे तेरे पागलपनमें कुछ भी संदेह नहीं है। तू खफखान हो गई है।

सखी—हा, पूर्णरूपसे मदनदेव सवार हो गया है। उसीने चित्त विक्षिप्त कर दिया है। क्यों नहीं ? "खरबूजाको देखकर ही तो खरबूजा रंग पलटता है।" आज न मालूम दिलमें क्यों आनन्द आ रहा है। दिल उमंग रहा है, तबियत ललचा रही रही है, सच कहती हूं बहन !

कनक—तो नांच और गा।

सखी—हां बहन ! ठीक कहा। आज मेरी प्यारीको एक प्यारा मिलेगा, भला इस भारी खुशीमें मैं क्यों न नाचूंगी ? क्यों न गाऊंगी ? नाचती है और गाती है)

गाना सखीका—

आज मेरी प्यारी ! देखो क्या आई बहार ॥ टेक ॥
आनन्द भारी ये दिलमें समाया, देखेंसे सुघड़ कुमार ॥ १ ॥

नाचो औ कूदो औ मङ्गल गाओ, फूलें फलें ये कुमार ॥ २॥
मेरी सखी आज वरनी वनेगी, वरना वनेंगे कुमार ॥ ३ ॥
आवो वहन मिलि खुशियां मनावे आनंद लवें अपार ॥ ४ ॥

कनक—तुझ आज क्या सूझा है ! बता तो सही तेरा दिल किस पर रीझा है।

सखी—किस पर रीझा है यह तो हम क्या जानें, मगर अन्दाजसे, नहीं, सच कहती हैं कि आज दिल बिलकुल रंग भींगा है। क्या आपको मालूम नहीं है ?

कनक—क्या यह दिल्लगी बन्द न करेगी !

सखी—(हाथ जोड़) अहा ! दिल्लगी ! नहीं बहन ! मन लगी। क...रूं...गी...बन्द...क्यों न करूंगी ? नहीं बहन ! आज तो कुछ कर लेने दो, कल तो किसी दूसरेके साथ ही मन लगी होगी। क्यों बहन ! होगी न ।

कनक—(डपटके साथ) क्या नहीं मानेगी ?

सखी—(डर कर) हैं बहन ! मारो मत ! हम तो डर गईं। हमारी बहन हमको मारेगी नही। देखो बहनके भीतरमें कितनी खुशी है। अहा ! वह बाहिर भी आ गई। (कनकमाला हंस देती है और एक चपत सखीके गाल पर लगा देती है)

सखी—(झूंठ मूंठ रोकर) आं, आं, आं, मैं जाती हूं और माताजीसे कहती हूं कि मेरी बहन अब हमसे प्रेम नहीं करती है। हमें तो मारती है और प्रेम न मालूम किससे करती है (सखी जाती है। उसके साथमें दूसरी सखी भी जाती है, यह देख

कनकमाला उसे पकड़ लेती है। मगर वह भी कुछ बनावटी गुस्सा कर बोलती है।) छोड़ो जी छोड़ो। मैं ये सब बातें अभी जाकर माताजीसे कहती हूं। देखो तो सखी मेरा गाल कितना सूज गया है। (गाल दिखाती है)

कनक—सखी! सखी!! मेरी प्यारी सखी!!! क्या तू मेरे हृदयको नहीं जानती कि मैं तेरसे कितना प्यार करती हूं। आज तो तेरा मिजाज फूलेदे रानीसे भी कुछ अधिक दिमाग पर चढ़ गया है जभी तो जरासी चपतमें गाल सूज गया है न। भला सही, मगर अब तो शांत होजा। क्या मेरी मुहब्बत पर ध्यान न देगी?

सखी—हां, बहन! जानती हूं। आप अब प्यार नहीं करती हो। बख्शी मांगती हो। सो ठीक ही है, कहीं एक म्यान में भी दो तलवारे समाती हैं।

कनक—फिर वही बात।

सखी—मेरी प्यारीके हित की बात। हृदय हुलसात, फूला है गात। प्यारी बहन! जरा मेरी तरफ तो देखो! (अंग फड़काती और मुशिकाती है) अहा! कैसा मजा है!

कनक—बहन! बहुत हो गया, अब आगे बढ़ना ठीक नहीं है। जब तू जानती ही है तब मुझसे और क्या पूछती है?

सखी—(हँसकर) बस, यही तो पूछना था, यदि इसी बातको पहिले से सीधी तरह कह देती तो इतना झंझट क्यों उठाना पड़ता। मगर "घी सीधी उँगलियोंसे नहीं निकलता"।
(गाती है)

गाना

मेरी प्यारी। मेरी प्यारी। मेरी प्यारी। मेरी प्यारी।
खिला मुंख चांद सम प्यारी भली फूली है फुलवारी॥टेक॥
न देखा रूप रंग ऐसा न देखी चाल मतवारी।
खिला है भूप जोवनका चमकती चांदनी भारी॥ मेरी॥१॥
बगीचेमें मंहक भारी खिली गुलनार कचनारी॥
बागवां था नहीं, प्यारी! मिला है आज सुखकारी॥ मेरी॥२॥

(कनकमालाका भाग जाना और पीछेसे सखियोंका भी चला जाना। इधर मंडपकी तयारी होकर शुभ समय शुद्ध लग्न में जीवंधरका कनकमालाके साथ विधिपूर्वक विवाह हो जाना। मुबारकबादी गानेको परियोंका आना)

गाना परियोंका।

मुबारक हो मुबारक हो मुबारक हो मुबारक हो।
आज दुल्हा औ दुलहिनको मुबारक हो मुबारक हो॥टेक॥
आज प्यारीने पाया है अहा! वर क्या सलोना है।
बजाओ बीन औ गावो रिझावो चित्त हरसावो॥ मुबा॥१॥
खुशीका समय है प्यारी मनाओ हर्ष अति भारी॥
सुनावो गीत हुलसावो आज रस रंग वरपावो॥ मुबा॥२॥
न ऐसा समय मिलना है न ऐसा रस वरसना है।
ये जोड़ी होय जयवंती ये जल्सा नित मुबारक हो॥ मुबा॥३॥

गाते २ परियोंका चला जाना (परदेका गिरना)

यवनिका पतन।

अंक तीसरा—सीन सातवां।

राजमहल।

जीवधरका बैठा हुआ दीखना।

(मुशकराती हुई एक जवान औरतका प्रवेश)

जीवन्धर—(सामने खडी हुई औरतसे) तुम्हारे यहां आने और मुह बनानेका क्या कारण है ?

औरत—हे सुमन ! मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अभी २ मैंने आपको आयुधशालामें देखा था और फिर यहां पर आपको देख रही हूं। अचंभा तो यों है कि आप यहां पर इतनी जल्दी कैसे आ गये !

जीवन्धर—(आश्चर्यके साथ) यह क्या बात है। क्या नंदाढ्य तो नहीं आ गया ! (कहकर ज्योंही स्वामी उठते हैं त्यों सामनेसे नंदाढ्य आ जाता है)

नन्दाढ्य—(पगोंमें पड़कर) हे पूज्य। कहिये कुशल तो है ?

जीवंधर—(छातीसे लगाकर) हां, प्रिय। कुशल है। तुम तो सभी लोग आनन्दमें हो न। यहांतक तुम किस तरह आये। हमारा भेद तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

नंदाढ्य—हे महाभाग ! मैं आपके यकायक गायब होनेके समाचार सुनकर बहुत दिनों तक खेदखिन्न रहा। एक समय मेरी भावी गन्धर्वदत्तासे भेट हुई। मैंने उसे हँसते हुये प्रसन्न-वदन देख बड़ा आश्चर्य किया, मगर उस बुद्धिमतीने मेरे अन्त—

रंग भावको ज्ञान कर कहा कि—आपके भाई साहब आनन्दमे हैं यदि तुम उनसे मिलना चाहते हो तो मैं वहांतक तुम्हें पहुँचा सकती हूं। सो मैं उसकी कृपासे आपके सहज हीमे दर्शन कर रहा हूं। लीजिये यह पत्र भाभीने दिया है। (पत्र देता है और जीवन्धर उसे पढ़ते हैं)

जीवंधर—(पत्र पढ़कर) अच्छा हुआ जो तुम यहांपर आ गये। चलो अन्दर चलें। (कहकर ज्यों ही भीतर जाते हैं त्यों ही कुछ एक ग्वाले रोते चिल्लाते हुये सामने आ जाते हैं)

जीवंधर—(ग्वालोंको रोता देख) अरे भाई! तुम सबके सब क्यों रो रहे हो?

ग्वाले—(रोते हुये) हे महाराज! हमारी किन्हीं दुष्टोंने गायें छिड़ा ली हैं। दुहाई है महाराजकी। हमें गायें शीघ्र मिल जानी चाहिये।

जीवंधर—अच्छा चलो हम तुम्हारी गायें अभी तुम्हारे पास भिजवाये देते हैं।

(ग्वाले चले जाते हैं। इधर जीवन्धर अपने भाई नंदाढ्यके साथ साथ ज्यों ही गायें दिलाने जाते हैं त्योंही जीवन्धरके मित्र-गण पद्मास्यादि सामने आ जाते हैं और स्वामीके पैरों पड़ते हैं। स्वामी उन्हें उठा कर छातीसे लगाते हैं और पूछते हैं) अय मित्रो! तुम यहांपर इतना मार्ग तय करके कैसे आ सके हो?

पद्मास्य—हे पुरुषोत्तम! हम आपके वियोगसे दुखी हुये बहुत काल तक इधर उधर भटकते रहे मगर आपका कुछ भी

पता न लगा सके, आखिरकार अचानक ही पूज्य गन्धर्वदत्तासे भेट हुई और उन्हींकी कृपासे हम बातकी बातमें आपका दर्शन कर रहे हैं। आप इस समय कहां जा रहे हैं?

जीवंधर—यहांके ग्वालोंकी गायें किसी दुष्टने छुड़ा ली हैं, सो उनकी गायें दिलानेकेलिये ही जा रहा हूं।

पद्मास्य—हे पूज्य! आपके दर्शनार्थ हमीं लोगोंने ये चेटक दिखाया था सो वह सफल हुआ। आप क्यों जाते हैं? हमने उनकी गायें लौटा दी हैं।

जीवंधर—और तो सब आनन्द है।

पद्मास्य—और तो सब आनन्द है मगर एक जो दुखदाई घटना देखनेमें आई है वह वचनसे नहीं कही जाती।

जीवंधर—कौनसी दुर्घटना! कहो न, जल्दी कहो। तुम चुप क्यों हो गये?

पद्मास्य—(उदास हो कर) हे स्वामी! हमने रास्तेमें (दण्डकारण्यमें) पूज्य माताको तापसाश्रममें अति उदास खिन्न-मन देखा। वे आपके वियोगमें अत्यन्त दुखित हैं। केवल आपके दर्शन करनेमात्रको ही जीवन रक्खे ठहरी हुई हैं।

जीवंधर—(बात काट कर) हाय! मेरी पूज्य मातेश्वरीकी यह गति! ऐसी अवस्था!! हाय रे क्रूरकर्म! फिर आगे क्या हुआ?

पद्मास्य—हमने आपका सब हाल कहा। आपके प्रभुत्व आदिका बयान किया। जब माताने काष्ठांगारके हाथसे आपकी

मृत्युके समाचार सुने उसी समय वे बेहोश होकर जमीन पर गिर गईं और मूर्छित हो गईं। फिर.........(यह सुनते ही जीवन्धरका भी गश खाकर जमीनपर गिर पड़ना। सभी मित्रों-का आश्चर्य करते दीखना)

[यवनिका पतन] ड्राप।

तृतीयांक समाप्त।

चतुर्थांक।

अंक चौथा—सीन पहला।

आर्जिकाश्रम।

बहुतसी आर्जिकाओंका सफेद साड़ी ओढे हुये दीखना।

त्रिजयाका सबके मध्य बैठी नजर आना।

(जीवन्धरका अपने मित्रोंसहित प्रवेश)

जीवंधर—(मित्रोंके बताये हुये इशारेसे जानकर, जल्दीसे) हे मात ! मेरे इस गुरुतर अपराधको क्षमा कर, मैं आज तेरा पवित्र दर्शन कर अपनेको बड़ा पुण्यशाली समझता हूं। मा ! मुझे बड़ा दुःख है कि तूने मेरे पैदा होतेही महान दुख सहे और मैं तेरी कुछ भी सेवा न कर सका।

त्रिजया—(उठा कर और छातीसे लगाकर) हे बेटा ! भवि-

तव्य इसी प्रकार था मुझे अपने कर्मोंका फल भोगना था। बेटा! कहीं कर्मोंका उदय भी हट सकता है।

जीवंधर—हे मातेश्वरी! अब चलो। तुम्हारा यह पुत्र तुम्हारी सेवा करनेको तयार है।

विजया—(उदास होकर) क्या बेटा! तेरे पिताका भी कोई स्थान सुरक्षित है? या तू यों ही इधर उधर भ्रमण कर रहा है।

जीवंधर—(पुराने दुखको याद कर) हे पूज्ये! मेरे पिता-का स्थान है, तू क्यों व्यर्थमें रंज करती है। मैं अभी उस स्थानको अपने हस्तगत करता हूं। तू देख! मैं उस कृतघ्नी, दुष्ट, दुराचारी, काष्ठांगारको मारकर किस प्रकार बदला लेता हूं।

विजया—बेटा! तेरे पास ऐसा क्या साधन है जो अपने पिताका स्थान पासकेगा! वह बडा बलवान होगया होगा।

जीवन्धर—हे मात! मेरे साथमें बहुत राजा मददगार हैं। क्या छोटासा सिंह स्थूल हाथियोंके यूथको नहीं भगा देता? क्या छोटासा अग्निकण ढेरों काष्ठोंके टुकडोंको नहीं भस्म कर देता? अब समय आगया। मैं गुरु-आज्ञासे एक वर्षके लिये ठहरा हुआ था, नहीं तो अब तक कभीका उस दुष्टको इस जहान से उठा देता।

विजया—ठीक है। मगर शत्रुका अधिक जोर है।

जीवंधर—मेरे पास उससे भी अधिक जोर है। मैं अकेला ही उसके नाशके लिये पर्याप्त हूं। क्या तुझे मेरा चरित्र मालूम नहीं है? क्या तू मुझे साधारण मनुष्य समझती है। मैं अपने

मुंह अपनी प्रशंसा नहीं करना चाहता मगर तुझे दिखा दूंगा कि पांच मिनटमें ही किस प्रकार इतने बड़े राज्यको हस्तगत करता हूं।

विजया—(खुश होकर) हां बेटा! तेरा कहना ठीक है। मैं भी तेरा सारा पराक्रम और चरित्र इन तेरे मित्रोंसे सुन चुकी हू। अभी मुझे आशा बँधती है कि तू आगे कुछ कर सकेगा।

जीवंधर—हे पूज्ये! अब चलो और देखो कि यह तुम्हारा पुत्र किस प्रकार बस दुष्टसे बदला लेता है।

विजया—अभी तेरा कहांपर चलनेका विचार है?

जीवन्धर—सीधा राजपुरीको।

विजया—और मुझे।

जीवन्धर—हे पूज्ये! मैं तुझे भी अपने साथ ले चलूंगा।

विजया—मेरी इच्छा कुछ दूसरी ही है।

जीवंधर—कहिये, जो तेरी आज्ञा होगी उसीके अनुसार कार्य किया जायगा।

विजया—प्रथम तुझे अपने मामाके घरपर चलना चाहिये। वहां जाकर और उनसे मंत्रकर पीछे कोई काम करना मुनासिब होगा। बड़ोंकी सम्मतिसे कार्य करनेमें अपना अनेक प्रकारसे फायदा होता है।

जीवंधर—तथास्तु! सब तेरी आज्ञा मुताबिक ही किया जायगा। (धीरे २ परदाका गिरना) [यवनिका पतन]

अंक चौथा—सीन दूसरा।

सागरदत्त सेठका महल।

एक निहायत खूबसूरत नोजवान कन्या अपने मकानके आगे गेंदसे खेल रही है।

(जीवन्धरका प्रवेश)

जीवन्धर—(कुछ दूरसे) अहा! क्या सुन्दर वेशभूषित नाज़नी है। क्या ही मनमोहक रूप है! कैसी मनोहारिणी छवि है! इसने तो सभी की सुन्दरता पर पानी फेर दिया। चलूं और इससे कुछ बात चीत करूं। (जीवन्धर सामने रक्खी हुई कुर्सी पर बैठ उसका मनोहर खेल देखने लगते हैं। मगर वह लड़की स्वामीको देखकर अपना खेल बंद कर देती है और इनकी तरफ स्नेहभरी आंखें डालती है)

जीवन्धर—सुन्दरे! हम तो तुम्हारा खेल देखन के लिये।
आये थे बहु दूर से तुझ रूप के खीचे हुये॥
मगर तुमने खेल अपना वन्द कैसे कर दिया।
दिल हमारा खेल तुमरे ने विमोहित कर दिया॥

विमला—क्या करूं मोहन तुम्हारे रूपने मुझको हरा।
खेल कीना बंद इसमें दोष मेरा नहिं जरा॥
दोष भी है तो तुम्हारा खेलने न मुझे दिया।
आपके सौन्दर्यने ही हाल आ ऐसा किया॥

आपका स्थान कहां है? और यहां बैठनेका क्या कारण है?

जीवंधर—हे मृगाक्षे! रूप तेरेने असर मुझ पर किया।

मुझ मुसाफिरको न चलने राह तक तू ने दिया ॥
जबरदस्ती से बिठाया और मन मोहित किया ।
इस तेरे सौन्दर्य्य ने ही खींच मुझको भी लिया ॥

यदि तुम्हारा ऐसा मन-मोहक रूप न होता तो मैं क्यों आता, अपनी रास्ता न चला जाता। मेरा आनेका कारण तो यह हुआ और निवासस्थान तुम अपने हृदयसे पूछ लो कि कहां है।

विमला—आपने भी मेरासा ही काफिया मिला दिया।

जीवंधर—काफिया क्या? जो सच्ची घटना थी, कह दी। क्या अपना खेल अब न दिखावोगी। क्या हमें उस आनंदसे वंचित रक्खोगी?

विमला—क्यों नहीं?

जीवन्धर—तब दिखाओ न, देरी क्यों करती हो?

विमला—अभी नहीं।

जीवंधर—तो कब?

विमला—इसका उत्तर अभी नहीं दे सकती।

जीवंधर—इसका सबब!

विमला—इसका सबब है अजब।

जीवन्धर—इतना गज़ब! एक परदेशीसे जो तुम्हारे प्रेममें भींगा हुआ है, इतनी नफरत!

विमला—नफरत! नहीं साहब! यों कहिये कि प्रेमका लिखा जा रहा, सख़त! आप उस पर कीजिये दस्तख़त, न मानिये दहमत!

जीवंधर—(खुश होकर) मेरी तरफसे हां चुक दस्तखत क्या रजिष्ट्री करानी है ?

विमला—हां, (कहकर नीची निगाह कर लेती है और पांवके अँगूठे से जमीन खुचरती है। जीवन्धर उसकी लज्जा दूर करनेको ज्योंही आगे बढ़ता है त्योंही भीतरसे किसीके आनेकी आहट सुन विमला भाग जाती है। सागरदत्त सेठका प्रवेश)

सेठ सागरदत्त—(बडे प्रेमसे जीवन्धरसे) हे भाग्यशालिन ! यह मेरा ही मकान है जिसको कि आपने अपने शुभ चरणोंसे पवित्र किया है और जो आपके पाससे अभी २ गई है वह मेरी परम सुन्दरी गुणवती विमला नामकी कन्या है। ज्योतिषियोंके बताये हुये चिन्होंसे इसके आपही भावी पति हैं, अतः कृपा कीजिये और इस मेरे कन्या-रत्नको स्वीकार कीजिये।

जीवंधर—आपकी आज्ञा मुझे मंजूर है।

(सागरदत्त सेठ अपनी कन्या विमलाका बडे ठाठ बाट और उत्सवके साथ विधिपूर्वक शुभ लग्नमें जीवन्धरके साथ विवाह कर देता है। परियां मुबारकवादी गानेको आती हैं)

गाना परियोंका।

हे सुकुमार ! तुम पर वारी २ जाऊं दिल वहार ॥टेक॥
सुभग सलोना वीद है, सुघड़ वींदनी लार।
अनुपम जोड़ी पावनी, दिपै चांद उनहार॥
है दिलदार ! तुमने दिलको लूट लिया है सुखकार ॥१॥

मोहित की सारी सभा, और सकल नरनार।
दर्शन लखि उमंगा हिया, बाढी प्रीति अपार॥
हे रसराज! तुमने आनन्द रस बरषाया रसदार॥ हे०॥२॥
सुन्दर घडी सुहावनी, वर्तमान की आज।
सुभग सुरस बरषा हुई सिद्ध भये सब काज॥
हे सरकार तुमने तनमें खुशी बढ़ई करि प्यार॥ हे सु०॥३॥

(गाना गाते २ परियोंका चला जाना)

[यवनिका पतन]

अंक चौथा—सीन तीसरा।

सुरमंजरीका महल

सुरमंजरीका भीतर बैठे दीखना। बाहिर दरवाजे पर द्वारपालका खड़ा दिखाई देना।

(वृद्ध अवस्थामें जीवन्धरका प्रवेश)

वृद्ध—(फाटक पर द्वारपालसे) भाई! मैं अत्यंत वृद्ध आगया हूं। आंखोंसे कम दीखता है। शरीर बिलकुल कमजोर है। मगर धर्मकी वासना मेरे हृदयमें अभी तक बनी है। यद्यपि मैं शक्तिहीन हूं तथापि इस गई गुजरी हालतमें भी कन्यातीर्थके दर्शन करना चाहता हूं।

द्वारपाल—(प्रणाम करके) तो आप यहां पर किस लिये आये हो? हमसे क्या चाहते हो?

वृद्ध—और तो कुछ नहीं चाहते, ब्राह्मणको और क्या चाहिये, सिर्फ भूख लगी है इससे रास्ता नहीं चला जाता। देखो मेरा पेट, भूखसे कहां जा रहा है। (पेट दिखाता है)

द्वारपाल—तो नगरमें जाकर भिक्षा क्यों नहीं माग लेते? क्या आप इस शहरमें अभी आये हैं?

वृद्ध—तो क्या भाई यह नगर नहीं है! मैं तो यही आसरा करके आया था कि मुझे यहां अवश्य भोजन मिलेगा मगर आप तो यों ही ऊपरा ऊपरी बातोंमें ही टालते दीखते हो।

द्वारपाल—क्या करें महाराज! हम लाचार हैं। आप आगे जाइये।

वृद्ध—ठीक है भाई! मगर मै इतना थक गया हूं कि आगे पैर ही नहीं उठता।

द्वारपाल—तो महाराज! आपका क्या मतलब है साफ साफ कहिये।

वृद्ध—मतलब यही है कि हमें भोजन मिलना चाहिये। आप भीतर जाकर कहें कि एक अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण भूखा दरवाजे पर खड़ा है। मारे भूखके उससे आगे नहीं वढा जाता।

द्वारपाल—हमारी मालकिन तो किसी पुरुषका मुंह ही नहीं देखती तब वहां जानेसे ही क्या लाभ होगा, इससे महाराज! आप दूसरी जगह याचना कीजिये।

वृद्ध—अरे भाई। उनका कुछ मतलब और ही होगा। ब्राह्मणको भूखा सुन वे अवश्य भोजन देंगीं। वे बड़ी धर्मात्मा.

है। जाओ भाई! भीतर कहो। हाय! मैं भूखके मारे मरा जाता हूं। (बैठ जाता है)

(द्वारपाल भीतर जाकर सब हाल कहता है। वह सब हाल सुनकर ब्राह्मणको भीतर आनेकी आज्ञा देदेती है।

द्वारपाल—(बाहर आकर) महाराज जाइये आपको हमारी मालकिन भीतर बुला रही हैं।

वृद्ध—(खुश होकर) क्यों नहीं भाई! दयावान पुरुष ऐसे ही होते हैं, जरा मुझे पकड़ कर भीतर ले चलो, मुझसे चला नहीं जाता। (द्वारपाल उस वृद्धका हाथ पकड़ भीतर ले जाता है और सुरमंजरीके पास खड़ा कर बाहिर आ जाता है)

सुरमंजरी—(प्रणाम करके) आइये महाराज! विराजिये और मेरे घर पर जो रूखा सूखा भोजन मौजूद है कीजिये।

वृद्ध—(चिरंजीव रहो-कह पाटा पर बैठकर) आपने बड़ी कृपाकी जो मुझ भूखेको भोजन कराने बुलाया। नहीं तो मैं क्या बिना भोजन के रह सकता था?

सुरमंजरी—लीजिये महाराज! भोजन कीजिये। (कह सुरमंजरी भोजन परोसती है और वह वृद्ध ब्राह्मण बडे आनन्द पूर्वक भोजन करता है।

वृद्ध—(तृप्त होकर) सुन्दरे! भोजन तुम्हारा खाय संतोषित हुआ।
ऐसा सुन्दर सुरस भोजन आज तक मैं नहिं किया॥
पेट भरि भारी हुआ इससे उठा जाता नहीं।
हूं बडा लाचार मेरा अंग ये उठता नहीं॥

सुरमंजरी— आपका नहिं दोष इसमें दोष इस जातित्वका।
खाने पर भी धापते नहिं रहै दुख पेटत्वका॥
खैर उठिये कीजिये आराम अब कुछ देर तक॥
पच न जावे आपका भोजन रहो तुम जब तलक॥

वृद्ध—क्या करूं मुझसे उठा जाता नहीं।
खालिया है बहुत बैठा भी रहा जाता नहीं॥

सुरमंजरी—(हँसकर-स्वगत)
क्या अजब आया तमासा देखनेमें आज ये।
पेट-फट इसका न जावे ब्रह्म हत्या पाप ये॥
है बड़ा भारी जहांमें लग न जावे ये मुझे।
मैं उठा इसको लिटाऊं वृद्धका क्या डर मुझे॥

(प्रगट) चलिये महाराज! उठिये और इस सेजपर कुछ देरके लिये आराम कीजिये। (वृद्ध उठनेकी कोशिश करता है मगर उठा नहीं जाता। यह देख सुरमंजरी अपनी हँसीको दबा कर हाथके सहारे उठाकर सेजपर लेजाकर लिटा देती है। वृद्ध पड़ा पड़ा गाना गाता है)

गाना वृद्धका

प्रेमी तेरे ढिग आया है लखि प्रेमकी वहार॥ टेक॥
मैं कहां २ भटकाया, तुव रूप देख ललचाया,
मेरे दिल माहि समाया।
तो कूं कठिनसे पाया है॥ लखि प्रेम॥ १॥
मनमोहक प्रेम लगाया, मेरी रग रगमें छाया,

गुण गण लखि जी हुलसाया।
आनन्द सुरस रस पीया है ॥ लखि० ॥ २ ॥
दिलका अरमान मिटाया, तेरा दर्शन करि पाया,
सुखके रस्ते को पाया।
तन मनमें प्रेम समाया है ॥ लखि० ॥ ३ ॥
है कन्या तीरथ भारी, जिसकी शोभा है न्यारी,
मैं तीरथ पुरी निहारी।
मम भई सफल ये काया है ॥ लखि० ॥ ४ ॥

सुरमँजरी—(स्वगत) अहा! क्या भुवनमोहक गाना है! कैसे सुन्दर लय है! कैसे सुन्दर शब्दोंका गुथान है! किस प्रकारका भाव इस गानेमें भरा हुआ है। मालूम पड़ता है इस बुड्ढेमें अवश्य कोई दैवी शक्ति है, अन्यथा क्या साधारण आदमी ऐसा गाना गा सकता है? सो भी इस अवस्थामें! (प्रगट पासमें जाकर) हे महाराज! क्या आप गानेके अतिरिक्त और भी किसी विषयमें ऐसी अलौकिक शक्ति रखते हैं।

वृद्ध—हे सुन्दराकृते! मैं हर एक विषयमें शक्ति रखता हूं। ऐसा कोई भी कार्य नहीं जिसे मैं सहजमें पूरा न कर दूं। मैं सिर्फ इस शरीरसे ही लाचार हूं। सो भी आज आपका भोजन करनेसे मैं अपनेको जवान ही समझने लगा हूं, क्या आपका कोई काम है? यदि होय तो कहिये मैं चुटकियोंमें पूरा कर दूंगा।

सुरमंजरी—हे प्रभो! मेरा इच्छित वर मेरेको मिलेगा या नहीं? यदि मिलेगा तो उसके मिलनेका क्या उपाय है?

वृद्ध—यही कार्य है ! इसे तो मैं अभी करे देता हूं। ऐसे २ कार्य तो मेरे अनेकों किये हुये हैं।

सुरमंजरी—हे महाराज ! तो करिये न, देरी क्यों कर रहे हैं ? मैं आपके इस अहसानको आजन्म न भूलूंगी।

वृद्ध—देरीकी क्या बात है ? बहुत जल्दी तरकीब बताये देता हूं बल्कि सिद्धि भी करा दूंगा ताकि आपको विशेष कष्ट न उठाना पड़े।

सुरमंजरी—तो अन्धेको सिवाय दो आंखोंके और क्या चाहिये ? कार्य-सिद्धि अभी करा देंगे या इसमें कुछ दिन देरी लगेगी ?

वृद्ध—ऐसी ही तरकीब की जायगी जिससे ये आपका कार्य अभी हो जायगा।

सुरमंजरी—अच्छा तो कीजिये न वह तरकीब, देरी क्यों कर रहे हैं ?

वृद्ध—तुम्हें कामदेवके मंदिर तक जाना होगा। वहीं पर तुम्हे उन्हींके वरदानसे इच्छित पतिकी प्राप्ति होगी।

सुरमंजरी—मैं तो नहीं जानती कि कामदेवका मंदिर कहां पर है ?

वृद्ध—यहीं तो पास ही में है। चलो, मैं तुमको अपने साथ ले चलता हूं और सब व्यवस्था करा देता हूं। (वृद्ध सुरमंजरी को ले जाकर कामदेवके मन्दिरके सामने खड़ी कर देता है तथा कामदेवसे तू अपना इच्छित वर मांगले कहकर पीछे खड़ा हो जाता है)

सुरमंजरी—(हाथ जोड़) हे कामदेव ! मैं तुम्हारी कृपासे अपना प्राणाधार स्वामी जीवंधरजीको होना चाहती हूं सो मुझे प्रदान करो। मंदिरके भीतरसे आवाज आती है कि जा "तेरा इच्छित पति तेरेको मिल गया" यह सुनकर ज्योंही सुरमंजरी पीछेको देखती है त्योंही अपनी ओर हंसते हुये जीवंधरको पाती है। इसी समय सुरमंरी लज्जासे नीचा मुख कर लेती है। (यहां पर कामदेवके मंदिरमें पहिले ही स्वामीने एक अपने मित्रको ये सब बातें समझा कर बैठा दिया था)

जीवन्धर—क्यों व्यर्थमें लज्जित होतीं हो। क्या कामदेवके दिये हुये वरको अपना इच्छितवर नहीं समझती ? यदि किसी दूसरे वरकी इच्छा हो तो मांग लो अभी कामदेव दे सकता है।

सुरमंजरी—(लज्जाको दबाकर) हे प्राणाधार ! क्या कोई रत्नको छोड़ कांचके टुकड़ेको चाहेगा ? क्या कोई कल्पवृक्षको छोड साधारण वृक्षके पास जायगा ? (कहकर पैरोंपर गिर पड़ती है)

जीवन्धर—(उठा और छातीसे लगाकर) प्रिये ! लज्जाको छोड़ो और पुण्यसे प्राप्त विषय भोगोंका आनन्द लो। भीतर से किसीके आनेकी आहट पाकर सुरममंजरी भाग जाती है और सामने सेठ कुवेरदत्त दिखाई देत हैं।

सेठ कुवेरदत्त—हे पुण्यशालिन ! हम आपका बहुत दिनों से इन्तजार कर रहे थे। सो आज आपके दर्शनसे हमें बहुत

खुशी हो रही है। आप मेरी प्रार्थनाको मंजूर करके मेरी पुत्री सुरमंजरीको स्वीकार कीजिये। निमित्तज्ञानियोंके बताये लक्षणोंसे आपही उसके पति हैं।

जीवन्धर—मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है (उसी समय सेठ कुवेरदत्त अपनी प्रिय पुत्री सुरमंजरीका स्वामी जीवन्धरके साथ बड़े उत्सवके साथ विधि पूर्वक विवाह कर देता है। परियां मङ्गलगान करने आती हैं।

गाना परियोंका।

तुम सब गावो मोद बढावो हर्षावो बहु आज।
नाचो कूदो बीन बजावो खुशी मनावो आज॥ टेक॥
आज खुशीका समय सुप्यारी साज रहा सब साज।
दिलमें लहर झकोरा मारै उठी प्रेमकी खाज॥तुम०॥
वरना वरनी बडे सलोने आज बने सिर ताज।
लखि २ रूप न धापै मम मन निरखै सभी समाज॥
॥ तुम सब० ॥ २ ॥

(गाते २ परियोंका चला जाना) [यवनिका पतन]

अंक चौथा—सीन चौथा।

जीवंधरका महल।

जीवंधर और उनकी रानी गंधर्वदत्ताका बैठा दीखना।

गन्धर्वदत्ता—कहिये प्राणनाथ! आप तो हमें भूल ही गये थे न।

जीवन्धर—भला प्रेमी भी अपने प्रेमीको कहीं भूल सकता है ?

गन्धर्व—इसका प्रमाण ?

जीवन्धर—इसका प्रमाण मेरे दिल से पूछो।

गंधर्व—हे दिल !, जरा बताना कि इन्होंने मेरी कितनी और कब २ याद की है। अरे मन ! बोलता क्यों नहीं है ?

जीवन्धर—बोलेगा, पहिले तुम्हीं कहो कि तुमने कब कब याद की है।

गन्धर्व—हे प्राण वल्लभ ! क्या मैंने आपको प्रेम-पत्रों द्वारा अथवा कभी २ प्रत्यक्ष जाकर मुलाकात नहीं की है ?

जीवन्धर—तो क्या मैंने तुम्हारे प्रेम-पत्रोंका उत्तर देकर या प्रत्यक्ष तुम्हारे जाने पर तुम्हारे मनोरथको सफल नहीं किया है ?

गंधर्व—(नीची निगाह कर) मेरा ही मतलब था, आपका तो कुछ था ही नहीं ?

जीवंधर—था, मगर उसकी गौणता थी।

गंधर्व—अस्तु ! इन बातोंका निर्णय तो समय आने पर हो जायगा मगर अब आपका इरादा क्या है ?

जीवंधर—मामा गोविंदराजजी आ गये हैं, बस उनसे मंत्रणा कर उस दुष्ट काष्ठांगारका नाश कर राज्य लेना है। मैं सिर्फ तुम्हारेसे मिलने आया था।

गंधर्व—प्राणेश्वर ! आपका विचार अति उत्तम है, शीघ्र ही यह कार्य करना चाहिये।

(बाहरसे किसीके आनेकी आहट सुन गन्धर्वदत्ता भीतर चली जाती है। द्वारपाल जीवन्धरके सामने दिखाई देता है)

द्वारपाल—(हाथ जोड़) आपसे मिलनेके लिये महाराज गोविंदराजजी बाहिर खड़े हुये हैं।

जीवंधर—उनको शीघ्र भीतर बुला लाओ। (द्वारपाल बाहिर जाकर उन्हें तुरन्त बुला लाता है, कुछ आगे बढ़कर ज्यों ही जीवन्धर पावोंमें गिरते हैं त्योंही गोविंदराज बीचमें ही उठा लेते हैं।

गोविंदराज—हे पुत्र ! कहो कुशल तो है।

जीवन्धर—(नम्रतासे) सब कुशल है। मैं आपकी सेवामें आही रहा था। और…

गोविंदराज—(बीचहीमें) अच्छा ये बातें पीछे होती रहेंगी पहिले बताओ कि अब क्या करना चाहिये। (मन्त्रीसे) कहिये आपकी इसमें क्या राय है ?

मंत्री—मेरी रायसे अब काष्ठांगारसे जीवन्धरको राज्य दिलाना चाहिये।

गोविन्दराज—ठीक है, मगर क्या वह दुष्ट सीधे साधे राज्य देगा ? वह अब भी हमारी आंखोंमें धूल डालना चाहता हैं। उसके अभी के पत्रको क्या तुमने नहीं पढ़ा है ?

जीवंधर—(क्रोधसे) कैसा पत्र। जरा निकालिये तो सही, इससे मालूम पड़े कि उसका क्या आशय है ?

गोविंदराज—(मन्त्रीसे) उस पत्रको एक बार इनके सामने भी पढो (पत्र पढता है)

श्रीमान् स्वस्ति श्री राजा गोविंदराजजी ! योग्य जुहारु।

यहां पर राजा सत्यन्धरको एक मदोन्मत्त हाथीने मार डाला था मगर कुछ एक व्यक्तियोंने आज फिर यह झूठी अफवाह उड़ाई है कि "हाथीके द्वारा राजा सत्यन्धरकी मृत्यु नहीं हुई थी किंतु उनके प्राणोंका घात करने वाला काष्ठांगार ही था" यद्यपि मैंने पहिले भी यह समाचार प्रगट कर दिया था कि यह झूंठ है वास्तवमें सत्यन्धरकी मृत्यु एक दुष्ट हाथी द्वारा ही हुई थी और आज भी आप उसी तरह समझें तथा एक बार आप अवश्य राजपुरी आकर दर्शन देवें। भवदीय—

महाराजाधिराज काष्ठांगार राजपुरी

जीवंधर—(क्रोधपूर्वक)

इस कृतघ्नीका। अभी तक नाम भी रहता नहीं।
क्या करूं गुरु-वाक्यसे दुःख सह लिया बोला नहीं॥
होगई अब म्याद पूरी उस दुरात्माको हनूं।
आप आज्ञा दीजिये मैं जाय दुश्मनको हनूं॥

मैं अभी जाकर उसका शिर उतार लाता हूं। (हाथमें तलवार लेकर जानेको तयार होता है)

गोविंदराज—(शांत करके)

वीरवर हे पुत्र! तुम कुछ देर तक शांती गहो।
आ गया है अन्त उसका मरेगा दुःखार्त्त हो॥
फिर उसीके दोषसे देना मुनासिब है सजा।
आपका इससे बढ़ै यश होय खुश सारी प्रजा॥

जीवन्धर—आप मुझको रोकिये मत शीघ्र आज्ञा दीजिये।
दुष्ट काष्ठांगारका दिलमें रहम मत कीजिये॥

गोविन्दराज—अच्छा हमने एक तरकीब सोची है यदि वह आपकी समझमें आजाय तब तो ठीक है अन्यथा आप जो कहेंगे वही किया जायगा।

जीवन्धर—आपने क्या तरकीब सोची है।

गोविदराज—मैं इसकी मृत्युके पहिले अपनी पुत्रीका स्वयंवर करना चाहता हूं। उसके बादमें इसके प्राणान्त करनेमें विशेष आनन्द आवेगा।

जीवन्धर—(कुछ सोचकर) अच्छा जो आपकी राय है वह मुझे मंजूर है। आपकी बातको मैं नहीं टाल सकता।

गोविंदराज—(ड्योढीवानको बुलाकर) जाओ और सारे शहरमें उक्त घोषणा फिरा आओ कि "जो कोई वीर पुरुष धनुधारी चन्द्रक यन्त्रमें लगे हुये कृत्रिम द्वादश वराहों (सूहरों) को एक ही साथ एकही वाणसे वेध देगा उसी वीरोत्तमको धरणीधर नगरीका राजा गोविंदराज अपनी सर्वाङ्ग सुन्दर लक्ष्मणा कन्याको अर्पण कर देगा" (ड्योढ़ीवान उक्त घोषणा फिराता है और इधर स्वयंवर मंडप बनकर तयार होजाता है। बहुतसे राजपुत्र और सेठपुत्र तथा काष्ठांगारादि आते हैं और सभी क्रम क्रमसे यन्त्रको वाणसे छेदते हैं मगर कोई भी नहीं छेद सकते, अन्तमें जीवन्धर स्वामी एक ही वाणसे सभी वराहोंको छेद ही नहीं देते किंतु उनकी तेज चालको स्थिर भी कर देते है।

गोविंदराज—(खड़े होकर) हे सभासदो! यह जीवन्धर कुमार राजा सत्यन्धरका प्रतापी पुत्र है, जिसका पराक्रम आप

लोगोंने खुद देख लिया है। इनको आजसे एक वर्ष पहिले ही अपने राजपुत्रत्वकी बात मालूम हो गई थी और इनकी उसी समय राज लेनेकी इच्छा थी मगर गुरु-आज्ञासे ये एक वर्षके लिये शांत रहे तथा इस एक वर्षमें इन्होंने सात उच्च घरानेकी कन्याओंके साथ विवाह किया है जिसका विशेष विवरण फिर सुनाया जायगा। अब ये अपने वंश परंपरागतसे आये हुये राज्यको प्राप्त कर हम सबोंको खुशी करेंगे।

राजा गण—आपका कहना ठीक है क्योंकि ऐसे असाधारण कार्य सामान्य पुरुष नहीं कर सकता। कहीं तेज भी छिप सकता है? धन्य है हम लोगोंको जो आज फिरकर अपने मालिकका दर्शनकर रहे हैं।

गोविंदराज—आप लोगोंने यहां पधारकर बड़ा अनुग्रह किया इसका मैं बड़ा आभारी हूं। अब जिस शुभ समय शुद्ध लग्नमें इन दोनोंका विवाह महोत्सव होगा तब आपको बुलाया जायगा। आजकी सभा विसर्जितकी जाती है। (यह सुनकर सब राजा आदिक चला जाना) यवनिका पतन।

अंक चौथा—सीन पांचवाँ।

रणांगण

एक तरफ काष्ठांगार अपनी फौज लेकर खडा है और दूसरी ओर जीवंधर अपनी सैन्य लेकर खडे हुये है।

काष्ठांगार—(सेनापतिसे) देखते क्या हो, सेना ठीक मुकाबिलेपर लेचलो। दुशमन सामने खड़ा है फिर क्या सोच रहे हो?

सेनापति—महाराज! इधर अधिक जोर है, मेरी रायसे आपको मिलकर समझौता कर लेना चाहिये। बुद्धिमानोंको समय देखकर ही कार्य करना चाहिये।

काष्ठांगार—तुम्हारी समझमें तो पहिले भी यही जचता था। क्या मेरी बताई हुई तरकीबों और मेरे पराक्रमको भूल गये?

सेनापति—भूल तो नहीं गया हूं पर देखिये महाराज उधर कितनी जन-संख्या है (दिखता है)

काष्ठांगार—क्या अधिक जनतापर ही जीत निर्भर होती है? क्या सिंहके सामने घना भी हाथियोंका यूथ ठहर सकता है? मैं अकेला ही इसके लिये पर्याप्त हूं।

सनापति—(स्वगत) सो तो ठीक है मगर जबतक काम नहीं पड़ा है तभी तक ये बहादुरी है। जब सामना होगा तब ऐसे भागोगे कि पीछे देखना भी कठिन होजायगा। (प्रगट).

महाराज! मेरी तो अभीसे छाती धड़कती है। मेरा दिल गवाही नहीं देता।

काष्ठांगार—अये सेनाधीश तू हो वीर फिर ये क्या कहै।
वीर क्षत्री भी कहीं ऐसा वचन मुंहसे कहै॥
जब मैंने इसके पिताको मार इक पलमें दिया।
तब बता इस छोकरेका तूने भय कैसे किया॥

चलो और दुशमनकी दहशत न करो।

सेनापति—आपकी आज्ञा मुताबिक काम करता हूं सही।
पर न होगी जीत अपनी बात मैं ये सच कही॥
अन्य सैना है हमारी उधर सैना है बड़ी।
है नहीं उत्साह देखो सबकी सब कांपै खड़ी॥

(अपनी कांपती हुई सेनाको दिखाता है)

काष्ठांगार—फिर वही बात, कहीं लड़ाई छिड़े बिना ही शूरिमाओंकी परीक्षा होती है? क्या असली घोड़े भी कूदते फांदते हैं? तुम तो सेना आगे बढ़ाओ और दुशमनका काम तमाम करो। दूसरी बात जबानसे मत निकालो। नहीं जानते हो कि शूरिमाओंकी कौनसी गति प्रशंसनीय होती है? उनको यश किस अवस्थामें मिलता है। (यह बात सुनते ही सेनापतिको भी कुछ जोश आजाता है। वह सेना आगे बढ़ाता है मगर पांव पीछे ही हटते हैं। सभी सेना कांप रही है)

जीवंधर—(परचक्रको आता हुआ देख) अय वीरो! आज यह दुष्ट, दुराचारी, कृतघ्न, पापी काष्ठांगर सामने आरहा

है। इससे मैं चाहता हूं कि इस निरपराधिनी प्रजाके प्राण क्यों हते जांय। मैं ही इस दुष्टका काला मुंह क्यों न कर दूं। (कहकर ज्योंही जीवन्धर ललकारता है त्योंही सारी सैन्य कांपती और पीछे हटती है)

काष्ठांगार—(सेनाको हटती देख) अरे बराक! इन विचारों की जान लेनेमें क्या पड़ा है। मेरी और तेरी ही आज इस रण क्षेत्रमें लड़ाई हो और उसी पर विजय निर्भर हो।

जीवंधर—रे कीट, पापी चांडाल, दुरात्मा! मैं तेरा उसी समय काम तमाम कर देता, मगर गुरुकी आज्ञासे मुझे ठहरना पड़ा। अब वह समय आगया जो तेरी दुष्ट करतूतोंका फल दिया जायगा।

काष्ठांगार—क्या अब तेरे गुरुने आज्ञा दे दी है, यदि न दी हो तो फिर आज्ञा लेकर आ, नहीं तो फिर मौका न मिलेगा। देख मैं तुझे भी तेरे पिताके समान अभी मूलीके समान उखाड़ कर फेंक देता हूं। क्यो व्यर्थमें गाल बजा रहा है।

जीवंधर—रे नरकीट! तुझ पर वार करनेसे मुझे लज्जा आती है। यदि कोई शूरवीर होता तो हाथ दिखलानेमें आनंद भी आता मगर भवितव्य बलवान है। मुझे तुझ लकड़हारेको मारना ही होगा। रे दुष्ट! विश्वासघाती। तू क्यों गरजता है? क्यों नहीं सामने आकर अपना पराक्रम प्रगट करता है।

काष्ठांगार—लज्जा क्यों न आती होगी। भाग जा, अभी समय है, बाद पछतावेगा और यह मौका फिर न पावेगा

क्या चारों कोरणाङ्गणमें लज्जा आना चाहिये ? क्या मारनेका तूने पाठ पढ़ लिया है जो बार २ तेरे मुंहसे यही निकल पड़ता है। रे दुष्ट छोकरे ! क्या इस छोटे मुंहसे इतनी बड़ी बात निकाल रहा है।

(जीवन्धर क्रोधसे ज्योंही सामने आता है त्योंही काष्ठांगार उसके ऊपर शस्त्र छोड़ता है मगर वह व्यर्थ जाता है। काष्ठांगार फिर भी दूसरा वार करता है लेकिन वह भी कुछ कार्यकारी नहीं होता। फिर स्वामी शस्त्र न चला कुछ आगे बढ़ एक तमाचा उसके गालमें लगाते हैं। बस तमाचा लगते ही वह धड़ामसे जमीन पर गिर पड़ता है और गिरते ही प्राण निकल जाते हैं। काष्ठांगारको मरा हुआ जान सारी सेना भागने लगती है किंतु जीवन्धर उसी समय अभयदानकी घोषणा कर वापिस बुला लेते हैं। बाद जीतका नगाड़ा बजाते हुये राजधानी की तरफ चले आते हैं। सभी लोग जय २ शब्द-बोल रहे हैं)

यवनिका पतन।

अंक चौथा—सीन छठवां

राजदरबार ।

वाकायदे राज सभाका लगा हुआ दीखना । सबके बीचमें सिंहासन पर बैठे हुये जीवंधरका नजर आना ।

(देवका प्रवेश)

देव—(अनेक प्रकारकी देवोपनीत सामग्री रखकर) हे पूज्य ! इस लघु भेंट को स्वीकार कीजिये । (देव अपने हाथसे स्वयं वस्त्राभूषण पहिनाता है । बाद अनेक राजा लोग भेंट अर्पण करते हैं । भेंट करनेके बाद सब अपने अपने योग्य स्थान पर बैठ जाते हैं ।)

गोविंदराज—(खडे होकर) हे उपस्थित महाशयो ! आज का आनंद वचनों द्वारा नहीं कहा जा सकता है । बडी खुशीका समय है कि हम लोग आज अपने स्वामीको राजगद्दी पर बैठा हुआ देखते हैं । ऐसे सुअवसर पर मेरी इच्छा है कि अपनी पुत्री लक्ष्मणाका जो मैं इन्हें प्रथम ही अर्पण कर चुका हूं विवाह कर दूं । यह सम्मति मैं इनके पिता तुल्य श्रेष्ठवर्य गन्धोत्कटजी से मांगता हूं । आशा है वे मुझे अवश्य मंजूरी देंगे ।

गन्धोत्कट—मुझे बडी खुशी है कि आप ऐसा योग्य संबंध करना चाहते हैं । आपकी कन्याका सम्बन्ध मुझे सर्वथा मंजूर है । (यह सुनकर राजा गोविंदराज अपनी पुत्री लक्ष्मणाका बडी विभूतिके साथ जीवन्धरको विधि पूर्वक शुभ समयमें अर्पण

कर देते हैं। इस अवसर पर जीवन्धर की माता विजया तथा अन्य सातों गन्धर्वदत्ता आदि रानियां आ जाती हैं उन्हें पहिले ही नंदाढ्यादि मित्रगण लिवा लाते हैं। बड़ा जलसा होता है। याचकोंको दान दिया जाता है। तमाम कैदी जेलसे मुक्त कर दिये जाते हैं। स्वामी अपने पिताके स्थान पर सेठ गंधोत्कट को और मंत्रीके पद पर नन्दाढ्यको तथा अन्य सबोंको भी यथा-योग्य पदों पर नियत करते हैं। सभा ज्योंकी त्यों बैठी रहती है। परियां मंगल गान करनेको आती हैं)

गाना परियोंका।

मोद चित धरा, दुख आज सब हरा,
पाय वीर आज रात शोभता खरा ॥ टेक ॥
आज खुशी सब प्रजा वर्ग आनंद छटा छवि छाय रही ॥
राज श्री राजाधिराज जीवंधरजी को भाय रही ॥
राज सुरपुरा ॥ मोद० ॥१॥

आज मुबारक बादा गावें राजपुरी राजेश्वर की ॥
वीर पुरुष धर्मज्ञ, सुभग, न्यायी स्वामी जीवंधर की ॥
वीर नरवरा ॥ मोद० ॥२॥

गावें नाचें मोद बढ़ावें हर्षावें सब सुख पावें ॥
आस लगावें गुण गावें ये जलसा हम नित ही पावें ॥
सर्व सुख करा ॥ मोद ॥३॥

जीवंधर—नाटक गाया दिल हरषाया बहु सुख पाया ॥

'कुंज' बनाया मोद बढ़ाया सभ्य सभा मधिमें गाया ॥
हर्ष उर भरा ॥मोद॥४॥
श्री जिन चरण शरण गहि मैंने रचा-न दिलमें दूजा ख्याल
जयजिनेश बोलो भविजन मिल कहता कुंजविहारी लाल ॥
शरण जिनवरा ॥ मोद ॥५॥

(गाते २ परियोंका चला जाना)

ड्राप ।

चतुर्थांक समाप्त ।
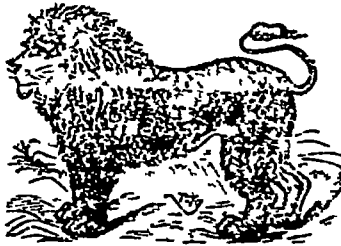
अंतिम मंगलाचरण तथा ग्रंथकर्त्ताका परिचय

दोहा—श्री जिनदेव तुझे नमूं। जगके भूषण जानि॥
सब माया ममता तजी। रागद्वेष भय खानि॥१॥
महिमा जिन तेरी अगम। जीतब तुव सुखदाय॥
केवलवाणी[1] तुव सुनत ही। पुनर्जन्म नशि जाय॥२॥
त्रस्त जीव सुख को लहैं। कुंदकिली हरषाय॥
जग जीवन हितकारिणी। विगत दोष जिन माय॥३॥
हाथ जोड़ि कर नमत हूं। रीझ सरस्वति माय॥
लाखों जीव सुधर गये। लगाध्यान तुव माय॥४॥
वचन जिन्हों के सुखद-चा। रसलयादिक गुणाधार॥
लखत चलत चौकर मही। नेह तज्यो दुखकार॥५॥
इन गुण जुत गुरुको नमू। सब जीवन सुखकार॥६॥
कोन जगतमें है दुखी। रखेजु तत्व विचार॥६॥
चाहत लेखक भक्ति तुव। है जो जगमें सार॥
मेरा परिचय चरण का। प्रथमाक्षर-करतार॥७॥

शुभ भवतु लेखक पाठकयोः—

१ शिक्षा।

'कुंज-ग्रंथमालाके अपूर्व ग्रंथ'

१—मणिभद्र नाटक.

२—निग्रंथचतुर्मुनि पूजा.

३—दक्षिण संघाधिपति आचार्य श्रीशांतिसागर पूजा.

४—कन्याविक्रय प्रहसन

(छप रहे हैं)

५—सतीजयंती—एक सामाजिक शिक्षाप्रद, अति उत्तम उपन्यास।

६—रमणीचातुर्य।

७—कुंजगायन मंजरी—जिसमें नई चालके पद भजन और अनेक सप्तव्यसन निषेधक छाप भी हैं।

पुस्तक मिलनेका पता—

कुंजबिहारीलाल जैन शास्त्री

प्रधानाध्यापक दि० जैन पाठशाला हजारीबाग।